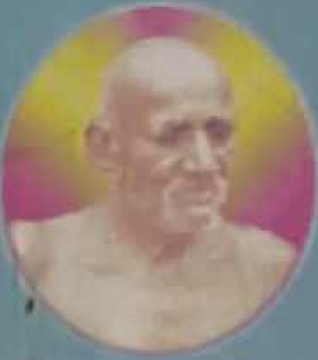

नैतिक कथा मंजूषा

भाग १

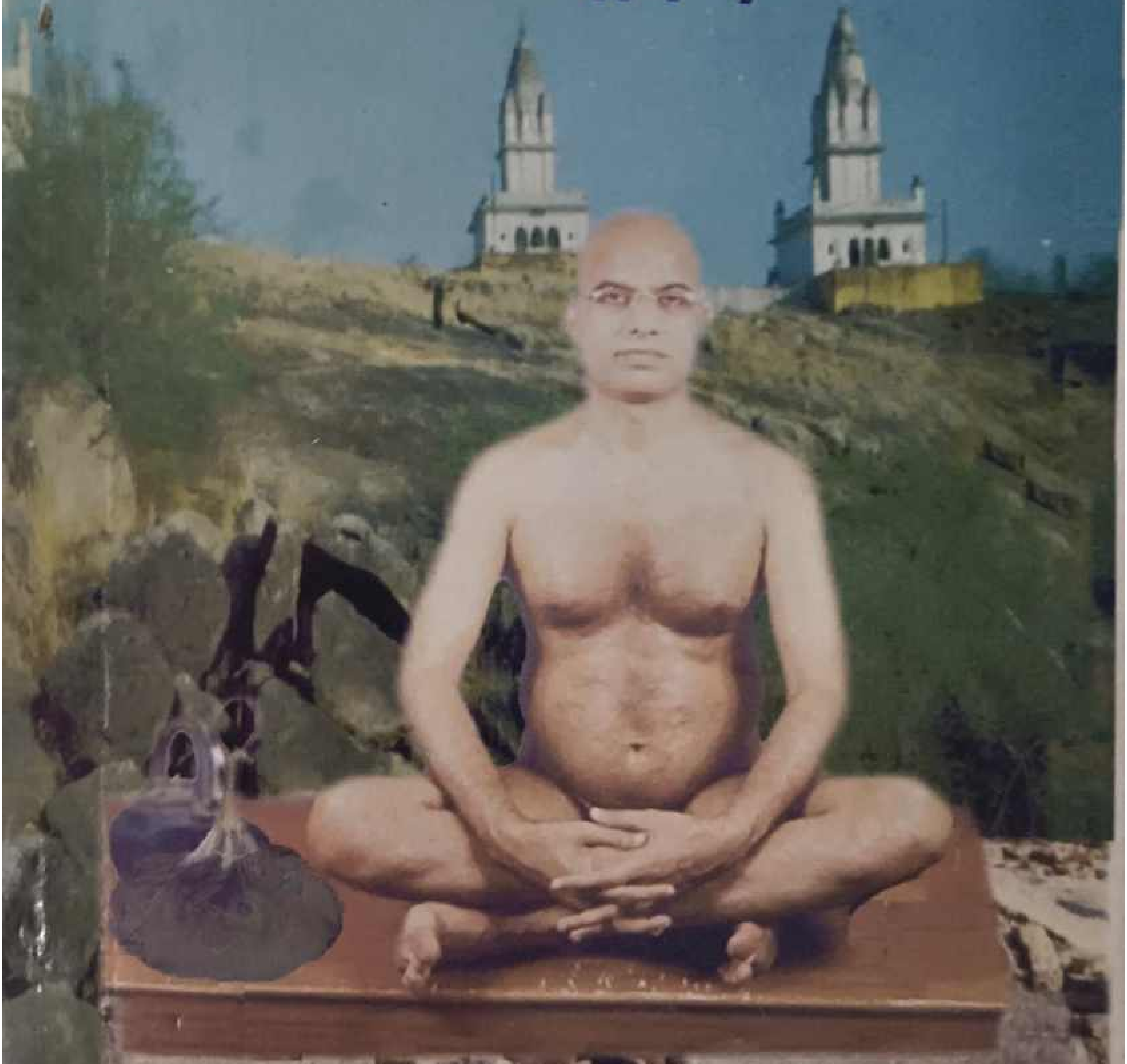

कृतिकार

आचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज

पौराणिक कथा साहित्य

नैतिक कथा मंजूषा

भाग १

* लेखक *

प. पू. आ. श्री १०८ विराग सागर जी महाराज

* प्रकाशक *

श्री सम्यग्ज्ञान दिगंबर विराग विद्यापीठ

बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र)

पौराणिक कथा साहित्य

नैतिक कथा मंजूषा भाग १

पावन अवसर :
श्री. १०८ आचार्य विरागसागरजी महाराज ससंघ चातुर्मास २००४ कारंजा (लाड)
जि. वाशिम महाराष्ट्र - ४४४ १०५

प्राप्ति स्थान / प्रकाशक
श्री सम्यग्ज्ञान दिगंबर विराग विद्यापीठ
बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र)

अर्थ सौजन्य
१) श्री अशोक सिंघई (जैन), कारंजा (लाड)
२) श्री अनिल गुलाबसा वाल्ले (जैन), वाशिम

मूल्य : २० रूपये (पुन:प्रकाशन हेतु)

संस्करण : २००० (चतुर्थ)

कंपोजिंग एवम् साजसज्जा
सौरभ महेन्द्र रवने (जैन)
आदीनाथाय कॉम्प्युटर्स,
चवरे लाईन कारंजा (लाड)
फोन नं. (०७२५६) २२२४९०

मुद्रक
अरूण मुद्रण, मेन रोड कारंजा

इनके सौजन्यसे.....

स्व. शांतीबाई बाबूलालजी सिंघई इनकी स्मृती में द्वारा

सौ. वंदना अशोक सिंघई

श्री. अशोक बाबूलालजी सिंघई

एवम्.....

श्री. गुलाबसा वाल्ले (जैन)इनकी स्मृती में द्वारा

सौ. मिनाक्षी अनिल वाल्ले (जैन)

श्री. अनिल गुलाबसा वाल्ले (जैन)

॥ श्री विमलसागराय नमः ॥
॥ श्री विरागसागराय नमः ॥

मुझे कुछ कहना है.....

दया के सागर, ज्ञान के भण्डार, करूणा की जलधार, ध्यान की शीतलहर, तप के उपासक, धर्म साधनार्थ महामेरू बुंदेलखंण्ड के प्रथमाचार्य संत शिरोमणि उपसर्ग विजेता परम पूज्य आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज के पावन चरण कमलों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटि कोटि नमोस्तु.....

आचार्यश्री धन्य भाग हमारे ! जो आप दक्षिण भारत की काशी कारंजा नगरी पधारे। मैने जरूर पूर्व जन्ममे कुछ पुण्य कर्म किया होगा इसीलिये आज आपका शुभ आशीष प्राप्त हो रहा है। आपने आपपर हुआ ३६ घंटे के उपसर्ग के समय भी ध्यान और मौन नही छोड़ा। वह उपसर्ग कि तारीख १६/१७ अगस्त २००३ का वह काला दिन आज भी याद आता है तो मन अस्वस्थ होता है। शरीर के रोंगटें खडे होते हैं। और जब आपने उस उपसर्ग पर विजय पाया वह दिन हम सबके लिए पावन दिन था।

भगवन् और क्या कहूँ ! जीवन भर आपकी करूणा मुझपर बनी रहे। यही विनती करता हूँ।

भूल चूक सब माफ हो, मै हूं निपट अजान।
एक भावना बस यही, हो सबका कल्याण॥
तुम चरणों का दास मै , करता हूँ अरदास।
नाश पाश भव का करो, दीजे चरण निवास॥

उस कार्य मे मुझे कारंजा स्थित सकल जैन समाज का तथा मुख्य रूपसे श्री अनंतकुमारजी डोलस (गुरूजी) एवम् श्री महेन्द्र रवने इनका विशेष सहयोग प्राप्त हुआ इसलिये मै उनका आभारी हूँ।

आपके चरणो का दास
अनिलकुमार गुलाबसा वाल्ले (जैन)
वाशीम (महाराष्ट्र)

जरासी बात

इस पंचमकालमें जहां टी.वी. के माध्यमसे पाश्चात्य संस्कृति घर घर में पहुंच रही है। नैतिक स्तर इतना शिथिल हो गया है कि, ढूंढते मिलना भी कठिन हो रहा है। बालकोंका मन तो गीली मिट्टी के समान ही होता है, साथही इस भुलावे में वे जल्द ही आकर्षित हो रहे है, पाश्चात्य रंगीनियोंमें ढ़ले जा रहे हैं। ऐसे में प्रथमानुयोग की कहानियाँ एवं उनके पौराणिक नायकों का चरित्र ही उन्हें उनका ऐसा ढ़लता जीवन प्रवाह उबारने के लिए उपयोगी एवं सहायक है।

इसी पार्श्वभूमि में परमपूज्य आचार्य श्री १०८ विरागसागरजी द्वारा सरल एवं प्रभावपूर्ण शैली में लिखी गई ये पौराणिक कहानियां एवं चरित्र, बालक ही नही सब स्तर के श्रावकों को जीवन के नैतिक मूल्यों के प्रति सोचनें के लिए बाध्य करेगीं।

संतो का चरित्र साक्षात दर्पण होता है उनकी कथनी और करनी में रंच मात्र भी अंतर नहीं होता हैं, यह आचार्य श्री पर भिलाई में हुए उपसर्ग के समय साक्षात देखने को मिला, लगातार ३४ घंटे एक मुद्रा में मौन बैठे रहे, मौन खोलने के पश्चात क्षमाभाव के ही दर्शन हुए। यह आचार्य श्री का हम सब श्रावकोंपर अतीव अनुग्रह है।

इस प्रथम भाग ''नैतिक कथा मंजूषा'' द्वारा हमको आचरण का सुपथ मिला है। निश्चित ही जीवन प्रवाह को सम्यक्धर्म की ओर अग्रसर होने में

सहायक हो, यही मूलभावना इन कथाओंके प्रकाशन में निहित है।

इसी मूलभावना को आत्मसात करके जीवन को सन्मार्ग में परावर्तित करने में हम सफल हो। यही भावना है। इस पुस्तक के प्रकाशन में श्रीमान अशोकजी सिंघई एवं श्रीमान अनिलकुमारजी वाल्ली अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया हैं उस में परम मुनि भक्त श्री अनंतकुमारजी डोलस (गुरूजी) कारंजा ने जो अपना सहयोग दिया है, आभारी हूँ। साथ ही साथ इतनी कम अवधि में मुल कापी की जांच एवं मार्गदर्शन इंजिनियर श्री दिनेश जैन भिलाई, तथा डिजाईन एवं प्रिटींग में श्री सौरभ रवने (जैन) आदीनाथाय कॉम्प्युटर्स कारंजा एवं श्री विपिन जोहरापूरकर और आनंद जोहरापूरकर, अरूण मुद्रण का विशेष योगदान रहा हैं। निश्चित ही वें धन्यवाद के पात्र हैं।

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विरागसागरजी के चरणों में त्रिवार नमोस्तु। एवं आशीष की चाह में।

महेन्द्र रवने (जैन)

कारंजा (लाड)

भाद्रपद शु.५ वीर संवत २५३०

॥ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥

मंगलाचरण

विश्वशान्ति णमोकार महामन्त्र

णमो अरहंताणं	**अरहंतों को नमस्कार हो।**
णमो सिद्धाणं	**सिद्धों को नमस्कार हो।**
णमो आयरियाणं	**आचार्यों को नमस्कार हो।**
णमो उवज्झायाणं	**उपाध्यायों को नमस्कार हो।**
णमो लोए सव्वसाहूणं	**लोकवर्ती सभी साधुओं को नमस्कार हो।**

एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलं ॥

अर्थ - यह पंच नमस्कार मंत्र सभी पापों को नष्ट करने वाला है और वह विश्व के सभी मंगलों में पहला मंगल है।

जीवन में सत नैतिकता ही पावन पथ दर्शाती है,
पावनता का बोध करा कर पावन चरित्र सिखाती है।
संसार सिन्धु में पतित जनों को भव से पार लगाती है,
ग्रहण करों हे भविक जनों ये ! पावन पवित्र बनाती है !!

आद्य मिताक्षर

कथा साहित्य - प्राचीन काल से चली आ रही एक ऐसी साहित्यक विधा है जो धर्म के नैतिक एवं सैद्धान्तिक तत्वों को सुगम-से-सुगम एवं सुन्दर शैली में हृदयंगम करा देती है। यह पतित-से-पतित, प्राणियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें धार्मिक एवं नैतिक जीवन प्रदान करती है।

नैतिकता धर्म की आद्य भूमिका है - जब तक हमारे अन्दर नैतिकता नहीं आती है तब तक धर्म के बहुत ही दूर रहते हैं, नैतिकता से शून्य प्राणी कभी भी सत्य धर्म की पावन छत्र छाया में नहीं आ सकता है, क्योंकि नैतिकता के अभाव में धर्म आराधना से साधना संभव नहीं है इसलिए हमारे जीवन में प्रथमतः नैतिकता आना चाहिए, जिसके द्वारा हम इतने पवित्र हो जायें कि धर्म के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति जागृत हो जाय तथा धार्मिक आचरण की ओर हम अपने कदम बढ़ा सकें और उसके विपरीत कार्यों से हमें भय एवं ग्लानि हो जाये। किसी भी प्रकार के लोक निंदनीय पाप कार्य नहीं हो इसी बात को लेकर *आचार्य कुंदकुंद देव* ने कहा है कि -

कधं चरे कधं चिट्ठे, कधमासे कधं सये।
कधं भुं ज्येज्य भासेज्ज, कधं पावं णास वज्झदि।।१५०।।

मूलाचार/धवल पु.१

शिष्य गुरू से पूछता है कि, हे भगवान्! हम कैसे ठहरे? कैसे बैठे? कैसे सोयें? कैसे भोजन करें? कैसे बोलें? जिससे पाप का बंध न हो सके आचार्य श्री इन प्रश्नों के उत्तर में निम्न गाथा कहते हैं -

जदं चरे जदं चिट्ठे जद्मासे जदं सये।

जदं भुञ्जेज़ भासेज्ज एवं पावं ण वज्झई ॥१५१॥

मूलाचार/धवल पु.१

सावधानी से चले - जिससे किसी को कष्ट न हों और न किसी जीव को धक्का ठोकर चोट या उन्हें वध संबंधी दुख हों इस प्रकार यत्न (सावधानी) पूर्वक गमन करें इधर उधर न देखते हुए नीचे निगाह करके चलें।

सावधानी से ठहरे (सावधानी से बैठे) -जिससे धर्म के प्रति या धर्मात्माओं के प्रति अनादर भाव और अशिष्टता का व्यवहार न हो। अर्थात पूज्यों के समक्ष या धर्मायतनों में अथवा धर्म सभाओं में कभी भी पैर फैलाकर अशिष्ट आसन से न बैठें।

सावधानी से शयन करें - जिससे किसी जीव की विराधना (हिंसा) न हों या उन्हे किसी भी प्रकार का कष्ट न हों अथवा हम स्वयं भी योग्य स्थान पर सोये, सावधानी से सोये जिससे गिरने आदि का या किसी के द्वारा टोके जाने आदि का भय न हो और किसी भी प्रकार की अशिष्टता महसूस न हो।

सावधानी से भोजन करें -देख भालकर भोजन करें जो भक्ष्य हो, मर्यादित हो, शुद्ध हो, हमारे स्वास्थ के अनुकूल हो, मौसम के भी अनुकूल हो, तथा जिसके खाने से प्रमाद आदि दोष उत्पन्न न हों, उसे उतना ही खाये जितने को हम आसानी से पचा सके उसे दिन में एक ही स्थान पर बैठकर खायें, चलते फिरते न खाये और न बोलते हुए खाये, ताकि जूठन आदि यहाँ वहाँ न गिरे इस प्रकार यत्न पूर्वक भोजन करें।

सावधानी से बोलें - जो स्वयं को और दूसरों को हितकर हो, सत्य हो , सारगर्भित हो, निंदा या बुराई आदि से रहित हों, दूसरों के गुणों की चर्चाओं से युक्त हो, व्यर्थ

की चर्चाओं से रहित हो, सीमित हो, सभी को प्रिय हो, पूज्य पुरूषों के सम्मान सूचक हो, इस प्रकार यत्न पूर्वक बोलें। यदि उक्त सभी बातों का पालन यत्न पूर्वक किया गया है तो वे अवश्य ही आपको नैतिकता के माध्यम से पाप कार्यों से रक्षित एवं धर्माभिमुख करेंगी और जीवन में विनय, विवेक, शिष्टाचार, सदाचार आदि गुणों की जनक होगी।

कथा साहित्य एक प्राचीन काल से चली आ रही एक ऐसी विद्या है जो नैतिक सैद्धान्तिक वा अध्यात्मिक तत्वों को इतनी सुगम एवं सरल शैली में अवगाहित करा देती है कि जिसकी छाप सारे जीवन में अमिट रहती है ।

कथा साहित्य वह मिष्ठ चासनी हैं जिसके सेवन से हम संक्लेशोंत्पादक (संकटोत्पादक) महारोगों से बच जाते हैं तथा दुराचार से रक्षा, सदाचार, शिष्टाचार की ओर प्रतिशीलता, विपदाओं से सहन शीलता, आदि गुणों की प्राप्ति होती हैं। यही बात *समन्त भद्राचार्य* ने भी कहीं है -

बोधि समाधि निधानं बोधति बोध: समीचीन ।

यह साहित्य बोधि-रत्नत्रय (सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) और समाधि - (उक्त रत्नत्रय का फल) इन दोनों बातों का सारभूत खजाना प्रथमानुयोग है अर्थात् कथाओं का वर्णन करने वाला अनुयोग है। यह सर्वज्ञ देव द्वारा कथित होने के कारण सत्य प्रमाणित है। अपनी नन्हीं अवस्था में जिन्हें हम प्राय: दादी माँ या नानी माँ के मुख से मनोरंजन हेतु सुना करते थे वे ही कथायें हमारे जीवन में एक अपूर्व ही छाप छोड़ जाती हैं, कथाओं को सुनने से धर्म के प्रति श्रद्धा (विश्वास) भक्ति, साधना एवं धैर्य आदि विभिन्न गुण प्राप्त होते हैं। चरित्र निर्माण में वे हमारे

जीवन के अंत तक अपना प्रभाव रखती है। यह एक ऐसी विद्या है जो गिरे से गिरे प्राणी को कुपथ से उठाकर सुपथ में रखकर उसकी अभिवृद्धि करती हैं। ये कथायें सत्य को जितनी आसानी से उद्घाटित या जीवों का उद्धार कर सकती हैं विश्व की अन्य समस्त विद्यायें मिलकर के भी उतना नहीं कर सकती हैं। अपने सत्य आचारों व विचारों से दूसरों को प्रभावित करने के लिए आज इनकी अत्यावश्यकता एवं महत्वता है। यद्यपि जैन साहित्य में ऐसे अनेक कथाग्रंथ हैं, जो नीति एवं धर्म शिक्षा से ओत-प्रोत हैं किन्तु वे प्राय: साहित्यिक अलंकृत भाषा में हैं और वे इतने अधिक क्लिष्ट भाषा में है कि लम्बे व्याख्यानों के पश्चात भी उनका निचोड़ निकालना बड़ा कठिन हो जाता है। आज के युवक उन्हें या तो पढ़ते-पढ़ते हताश हो जाते हैं या हम क्या क्या पढ़ आये? और उससे हमें क्या क्या शिक्षा मिली? इसे आसानी से नहीं समझ पाते हैं। इस कारण युवा वर्ग या वक्तागण उनसे उपेक्षित हो यहाँ वहाँ की कथा-कहानियों द्वारा विषय का स्पष्टीकरण तो कर देते हैं। किन्तु जैनागम की कथाओं द्वारा प्रतिपादन नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें अच्छी तरह से समझा नहीं। अत: सर्विस करने वालों, वालकों या जैनेतर भाईयों को भी नैतिकता वा धार्मिकता का ज्ञान हो इसी उद्देश से ''नैतिक कथा मंजूषा'' नामक कृति का सृजन किया है श्री शुभचन्द्राचार्य द्वारा विरचित ''**श्रेणिक चारित्र**'' की कथाओं पर आधारित हैं। इन्हें नैतिकता से ओत-प्रोत और तत्तत् विषय की मुख्यता से लघु एवं सुगम वनाने का पूर्ण प्रयास किया गया है। जिससे पाठकगण या प्रवक्तागण अपने को और दूसरों को नैतिक एवं धार्मिक साधना में अग्रणी बना सकें तथा उपदेश प्रवचन और भाषणों में इसका उपयोग कर जन-जन में नैतिक एवं धर्म बोध दे सकें।

शास्त्र का मूलरूप न छूट पाये इस बात को लक्ष्य रखकर कदम उठाया है।

भाषा एवं शैली जरूर बदली है किन्तु विषय ज्यों का त्यों है और चिन्तन में आये हुऐ नैतिक सूत्रों के द्वारा उन्हें सुगम करने का पूर्ण प्रयास किया है तथा प्रत्येक कहानी के सारांश रूप में शिक्षा के साथ-साथ तत्-तत् जैनागम के एक-एक सुभाषित श्लोक या दोहे भी दिये गये है। इस बात का भीरूता पूर्वक प्रत्येक जगह ध्यान रखा है कि कहीं सिद्धान्त में हेर फेर न हो पाये अथवा हीनाधिकता न हो पाये फिर भी छद्मस्थ हूँ त्रुटियां संभव हैं अत: कही अज्ञान या प्रमादवश भूल चूक हो गई हो तो साधु जन क्षमा करें एवं सूचित करें जिससे उन्हें सुधार कर सकूं।

ॐ नमः

(आ. विरागसागर)

*****

कहाँ ? क्या है ?

क्रं. कहानीक्रम पृष्ठ

मंगलाचरण

(१) अभिमानी सोम शर्मा

(२) कपटी सोम शर्मा

(३) मंत्र और दया

(४) मोह का बंधन

(५) अज्ञानी चिलाती

(६) भाग्य की परीक्षा

(७) स्वामी भक्त मंत्री

(८) अनीति एवं अन्याय का फल

(९) अपमान का बदला

(१०) सच्ची मानवीयता

(११) बुद्धिमत्ता की परीक्षा

(१२) अनुभव एवं ज्ञान

(१३) नारी का चातुर्य

(१४) ज्ञान की परीक्षा

(१५) द्रव्यांतर पर प्रभाव

(१६) वीर पराक्रमी श्रेणिक और उनका पुरूषार्थ

(१७) नान्यथा मुनि भाषण

(१८) परम हितैषी करूणामूर्ति

(१९) परीक्षा बकरे की

(२०) बुद्धि की चतुराई (बावड़ी) ६४

(२१) क्षमा और हाथी का वजन ६८

(२२) खेर की लकड़ी एवं तिरस्कार ७१

(२३) तिल का तेल (विद्वेषता) ७४

(२४) सत्य स्नेह (दूध) ७७

(२५) एक मुर्गे की लड़ाई (मित्रता) ८०

(२६) बालू की रस्सी (कषाय दर्शन) ८३

(२७) अनीश्वरी सुख दुख (कद्दू) ८६

(२८) ठन्ड़े गरम जामुन (लोभ) ९०

(२९) कुशल बुद्धि - अभयकुमार ९४

(३०) पुत्र का न्याय (विद्या) ९७

(३१) विषयासक्ति १०१

(३२) विषय तृष्णा १०४

(३३) वासना की प्यास १०८

(३४) बुद्धिमत्ता एवं अंगूठी ११२

अंतिम मंगल

जीवन की सब कलुषित नीति, कालिमा आती है,

काला काला मुख को करके, कलंक तिलक लगाती है।

सुख को हरती दुःख को करती, नरक लोक ले जाती है,

उभय लोक में दुःख ही दुःख को, नित प्रति देती जाती है ॥

अभिमानी सोमशर्मा

चन्द्रपुर नगर के राजा का नाम सोम शर्मा था। वह बड़ा अभिमानी था। अपने अभिमान के समक्ष किसी को कुछ भी नहीं समझता था। उसके बल एवं वैभव के समक्ष सारी प्रजा कुछ भी नहीं कह पा रही थी यदि कोई जरा भी उसके प्रति अंगुली उठाता तो उसे सर्वस्व धन हरण या प्राण दण्ड जैसे महान दुःखों का सामना करना पड़ता था। उसका अभिमान सत्य एवं न्याय की मर्यादा लांघ चुका था इस कारण से सारी प्रजा का हृदय त्राहि-त्राहि से आक्रांत था। किन्तु क्या किया जाए? उन पर एक ऐसी आपत्ति थी कि जिसके कारण वे अपने नगर से अन्यत्र नहीं जा सकते थे। **''जब प्रबल पुण्य का उदय होता है तो बड़ी से बड़ी आपत्तियाँ टल जाती है''** राजा सोम शर्मा के अभिमान एवं प्रजाजन के करूण क्रन्दन पूर्ण समाचार सुन-राजगृह नरेश महाराज उपश्रेणिक का हृदय द्रवित हो उठा, प्रजा के प्रति उनकी करूणा उमड़ पड़ी। वे बड़े ही धर्मात्मा थे। प्रजा के सुख-दुख को अपना ही सुख दुख समझते थे, उन्होंने प्रजा की रक्षा करना अपना प्रधान कर्तव्य समझा, तथा सोम शर्मा के अभिमान मर्दन हेतु उनका खुन खोलने लगा। उन्होनें शीघ्र ही ससैन्य चन्द्रपुर की ओर आक्रमण करने हेतु प्रस्थान किया। उधर सोम शर्मा भी अपनी सेना लेकर उपस्थित हुआ। देखते ही देखते दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध

योद्धाओं की ललकारों एवं घायलों की आवाजों से आकाश मंडल गूंज उठा। खून की धाराओं का प्रबल प्रवाह बह रहा था। इत्यादि प्रकार से बहुत समय तक युद्ध चलता रहा। सोम शर्मा की सेना यद्यपि युद्ध कर रही थी किन्तु उत्साह हीन थी। क्योंकि वह भी अपने राजा के अभिमान से तंग हो चुकी थी। ठीक ही है "अभिमानी प्राणियों का कौन साथी हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।" परिणाम स्वरूप महाराज उपश्रेणिक ने सोम शर्मा को पराजित कर बंदी बना लिया। **"असत्य एवं अन्याय करने वालों की क्या कभी विजय हो सकती है? नहीं, कभी नहीं।"** सोम शर्मा को अपनी पराजय का बड़ा दुख हुआ। **'पराजय का दुख मरण से भी बदतर होता है।'** उसे अपने अभिमान का बड़ा पश्चाताप हुआ, अभिमान का प्रत्यक्ष फल-पराजय देख अब उसे अभिमान से भी ग्लानि होने लगी, वह अपने आप के लिए अब साधारण मनुष्य की भांति देखने लगा।

बंधन से छूटने का अब उसके पास कोई उपाय नहीं था। वह पश्चाताप की अश्रुधारा से अपनी शुद्धता प्रगट करने लगा। उसने महाराज उपश्रेणिक से अपने दुष्कृत्य की क्षमा मांगी एवं भविष्य में अभिमान न करने की प्रतिज्ञा ली। महाराज उपश्रेणिक दयालु तो थे ही उन्होंने उसे बंधन मुक्तकर अपने गले लगाया। **'सज्जन पुरूष दुर्गुणों पर ही क्रोध करते है किन्तु दुर्गुण दूर हो जाने पर फिर उनका क्रोध नहीं रहता।'**

अंत में राजा उपश्रेणिक ने सोम शर्मा के राज्य को वापिस लौटाकर ससम्मान उसे विदा किया। उनकी उदार वृत्ति की अपूर्व छाप सोम शर्मा पर पड़ी जिससे वह उनका अनन्य सेवक सदृश हो गया।

देखो, अभिमान का प्रत्यक्ष फल। अभिमान थोड़ा भी क्यों न हो, किन्तु वह प्राणी को अथाह दुख के सागर में डुबो देता है फिर उसका कोई साथी नहीं होता और न कोई सहारा। अंत में उसे छोटे से भी छोटे व्यक्तियों के प्रति भी झुकना पड़ता है।

इसलिए हम सब को कभी भी थोड़ा सा भी अभिमान नहीं करना चाहिए। अभिमान से सदा दूर रहना चाहिए। यही शिक्षा उक्त दृष्टांत से मिलती है।

*****

अहंकार प्राप्ति का रास्ता नहीं अहंकार समाप्ति का रास्ता है। अहंकार करने से विनयाचार का विनाश होता पाप पुष्ट होता जिस कारण से हमारे नए जीवन का पूर्ण रूप से पतन होता है। अत: हमें अपने जीवन में ऐसे काम करना चाहिए जिस से जीवन का पतन नहीं उत्थान हो।

आ. विराग सागर

कपटी सोमशर्मा

राजगृह नरेश महाराज उपश्रेणिक ने बंदी राजा सोमशर्मा को प्रार्थना सुनी और क्षमा दान देते हुए उसे बंदीगृह से मुक्त कर दिया एवं उसका राज्य भी वापिस कर दिया था। परन्तु **"कुत्ते की पुंछ बारह वर्ष तक भी क्यों न पोंगली (पोला पाईप) में डाली जाय किन्तु निकालने के पश्चात् वह टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है।"** यही अवस्था सोमशर्मा की थी - पराजित एवं बंदी होने पर भी तथा भविष्य में अभिमान न करने की प्रतिज्ञा लेने पर भी उसका अभिमान समाप्त नहीं हुआ था। ठीक ही है **"जो संस्कार अधिक समय तक जम जाते हैं फिर उनका सरलता से निकलना बड़ा ही कठिन हो जाता है।"**सोमशर्मा ने अपनी पराजय का बदला लेना चाहा पूर्वघटनाके स्मरण होते ही उसका खून खौलने लगा। उसने महाराज उपश्रेणिक को अपने षड़यंत्र में फंसाकर प्रतिशोध की ज्वाला को शांत करना चाहा। बहुत सोच विचार कर आखिर एक उपाय खोज ही लिया। उसने एक दिन बनावटी प्रशंसा करते हुए बहुमूल्य भेंट के साथ एक सुन्दर किन्तु कुटिल घोड़ा भी दिया। महाराज उपश्रेणिक सोमशर्मा की भेंटपाकर बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्हें सोमशर्मा की कुटिलता का कुछ भी पता नहीं था, अत: उन्होंने उस भेट को स्वीकार कर उसकी तथा सोमशर्मा की भूरि-भूरि

प्रशंसा की। घोड़े को देखकर तो वे फूले नहीं समाये घोड़े की परीक्षा हेतु वे उस पर सवार हुए।

देखते ही देखते घोड़ा हवासे बातें करनें लगा। महाराज उसकी तीव्र गतीसे बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे। इतने में घोडे ने उन्हे एक भयंकर गर्त (गड्ढे) में पटक दिया। ठीक ही है- **'धोखेबाज प्राणी सर्वप्रथम बड़े ही सुन्दर, सज्जन, कुशलश्वेत तथा मीठे दिखते है। किन्तु अन्दर से वे महान काले एवं हलाहल विष सदृश ही होते हैं।'**

गड्ढा इतना अधिक गहरा एवं अन्धकारमय था कि उसमें से निकलनेका महाराज उपश्रेणिक के पास कोई उपाय नही था तथा गड्ढे के उपर आसपास में कोई मनुष्य भी नहीं था जो कि उनका करूण क्रंदन सुन सके। सभी तरफ से निरूपाय हो अन्तमे उन्होंने अपना ही अशुभोदय समझा । वे विचार कर रहे थे कि पूर्वकृत पाप कर्म का ही नाम अशुभ कर्म है। आज उसका उदय काल आया हुआ हैं अब इसे चाहे हम प्रसन्नतासे सहन करें या संक्लेषतासे, आखिर तो सहन करना ही पड़ेगा। संक्लेषतापूर्वक सहन करनेसे तो उसका बंधन और अधिक जटिल होगा, अत: शांतिभावोंसे अपने परम इष्ट देवों (पंचपरमेष्ठीयों) का ही चिंतवन करना चाहिए। इत्यादि विचार कर वे भगवत भक्ति में लीन हो गये। **''प्राय: प्राणी आपत्तिके आ जाने पर ही धर्म, भगवान या गुरूओंका स्मरण करता है, यदि आपत्ति आने से पूर्व ही उनका**

स्मरण करने लग जाये तो फिर आपत्ति कैसी आ सकती हैं। ''

देखिये- कुटिल प्राणियों का हृदय कितना काला होता है कि वे अपने रक्षक एवं उपकारीके भी उपकार को भूल जाते हैं एवं प्रतिशोध की भावना से उनके प्राणतत्व लेने को तैयार हो जाते हैं हे '**कुटिल देवी तेरे लिए धिक्कार हो। तूने हीं सत्य, उपकारोंको कलंकित कर भोले प्राणियोंकी सम्यक्श्रद्धा का हनन किया है।'**

अतः भव्यों ध्यान रखो सदा कभी भी किसीको धोखा मत दो, और अपनें उपकारी को बदला उपकार से न दे सको तो कभी उनका अपकार मत करों।

विद्वेश वैरि कलहासुख भात भीति,
निर्भर्त्सनाभी भवनासु विनाशनाशीन् ।
दोषानुपैति निखिलान्मनुजोऽतिमाइ,
बुद्ध्वेति चारू मत यो न भन्जात मायाम् ॥१८॥ सु.र.सं.

अर्थ- अतिशय मायाचारी मनुष्य, द्वेष (क्रोध) वैर, युद्ध, दुख, हिंसा, भय, झिड़की, तिरस्कार और प्राणनाश आदि समस्त दोषों को प्रास होता है, ऐसा जानकर बुद्धिमान मनुष्य उस मायाचार का व्यवहार नहीं करते है अर्थात उसे त्याग देते हैं।

ॐ महामंत्र और दयाॐ

विशालगर्त में पड़े हुए महाराज उपश्रेणिक, बड़े ही दयनीय अवस्था में थे। प्रथम तो सुनसान स्थान यों ही भयानक एवं भयोत्पादक होता है और फिर वह यदि गाढ़ अन्धकार से व्याप्त हो तब तो कहना ही क्या? मरण से भी बढ़कर भासने लगता है। कर्मोंकी कैसी विचित्र लीला है कि कुछ क्षण पूर्व महाराज उपश्रेणिक कहाँ तो राज्यवैभव में सराबोर थे और कहाँ अगले ही क्षणोंमें वे भयंकर वन के विशाल गर्त में कराहने लगे। ठीक ही - **''कृतकर्म अवश्य ही फल देता है ..... प्राणी कर्मोंको हंसते हंसते कर्म को बांध लेता है किन्तु उनके उदयकाल में रोता है''** महाराज उपश्रेणिक ने गड्ढे से निकलने का अथक प्रयास किया किन्तु वे निकलनेमें असफल ही रहें। उन्होंने अनेक आवाजें भी लगाई किन्तु वहां था ही कौन? जो उनकी आवाज सुन सके। अन्त में सभी प्रकार से निरुपाय हो उन्होने अपने जीवनसुरक्षा का एकमात्र आधार **''णमोकार महामंत्र''** को ही माना। **''प्राणी प्रायः जब सभी उपायोंमें असफल हो जाते है तब उन्हे धर्म का स्मरण आता है।''** महाराज उपश्रेणिक आसन लगाकर बैठ गये एकाग्रतापूर्वक विशुद्ध भावोंसे **णमोकार मंत्र** का उच्चारण करने लगे। **'मंत्रों का अपूर्व ही प्रभाव होता है, उनमें एक ऐसी चुम्बकीय शक्ति होती है जो साधक की मनोकामनाओं को पूर्ण कर देती हैं। विशुद्धता एवं**

एकाग्रता से जपे गए मंत्र थोड़े ही समय में सिद्ध हो जाते हैं।'
विशाल गर्त महाराज उपश्रेणिक द्वारा शब्दोचारित महामंत्र से गूंज गया।

उसी समय यमदण्ड नामक भीलों का सरदार वहाँसे गुजरा। उसने गड्ढे में से आती हुई मनुष्य की आवाज सुनी, सुनते ही उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसने चौंककर गड्ढे की ओर देखा, और उस ओर बढ़ा। गड्ढे के अन्दर गहरी निगाहोंसे देखा किन्तु अन्धकार के अलावा उसे कुछ भी नही दिखा। मात्र मंत्र की उच्चरित ध्वनि ही उसके कानोंमे सुनाई पड़ रही थी।

अंत में उसने आवाज लगाई - कौन है गड्ढेमें?

उपश्रेणिक - मैं उपश्रेणिक।

यमदण्ड - आप कौन हो?

उपश्रेणिक - मैं राजगृह का राजा।

यमदण्ड *(विनम्र शब्दोंमें)* - महाराज आप! राजगृह नरेश!!

उपश्रेणिक - हाँ! हाँ!! मैं राजगृह नरेश।

यमदण्ड - महाराज! आप गड्ढे में कैसे गिर गए?

उपश्रेणिक - दुष्ट सोमशर्मा द्वारा प्राप्त धोखेबाज घोड़ेसे ......।

इत्यादि पूछताछ के बाद भीलराज यमदण्ड ने बड़ी सावधानीसे उन्हे गड्ढेसे निकाला। तथा गड्ढेमें गिरनेसे जो गहरें घाव हो गये थे उन्हे देखकर वह बड़ा व्याकुल हो गया। बड़ी अनुनय विनय के साथ उन्हे अपने घर ले गया और विभिन्न प्रकार की औषधियों से

उनका उपचार करने लगा।

देखिए। मंत्र का अचिंत्य प्रभाव जहां पर मनुष्य मात्र की आवाजतक नहीं थी। जहां उपश्रेणिक को प्राणरक्षा का कोई उपाय नहीं था, वहां पर भी उन्हें अपनी रक्षा के साथ योग्य सेवा की प्राप्ति हुई। दूसरी ओर यमदण्ड की करूणा, भले ही वह कार्य से भील था किन्तु हृदय से नहीं। हृदय से तो वह ब्राह्मण ही था। क्योंकि उसका हृदय करूणा से भरा हुआ था।

अत: हमे इस दृष्टान्त से शिक्षा लेनी चाहिए कि हम किसी भी परिस्थितिमें क्यों न हो, तो भी महामंत्र का स्मरण करते रहना चाहिए। महामंत्र के प्रभाव से सारे संकट क्षणभर में ही दूर हो जाते हैं। दूसरी बात यमदण्ड के समान करूणाशील होना चाहिए, किसी को भी दुखी देख उसके दुख दूर करनेका शक्तित: उपाय करना चाहिए यही अहिंसा, अनुकम्पा, करूणा एवं दयाधर्म है।

मन्त्रं संसार सारं, त्रिजगदनुपमं सर्व पापारिमन्त्रम्
संसारोच्छेद मन्त्रं, विषम विष हरं कर्म निर्मूल मन्त्रम् ।
मन्त्रं सिद्धि प्रदानम्, शिव सुख जननं केवल ज्ञान मन्त्रम्,
मन्त्रं श्री जैन मन्त्रं, जप जप जपितं जन्म निर्वाण मन्त्रम् ॥२॥

- आचार्य उमास्वामी

अर्थ - यह णमोकार मंत्र संसार में सारभूत है, तीनों लोकोमें उपमारहित है, सर्वपापोंको नष्ट करनेवाला है, संसार से निकालनेवाला है, हलाहल जैसे विषमविष को दूर करनेवाला है, समस्त कर्मोको निर्मूलन करनेवाला है, समस्त सिद्धि को प्रदान करनेवाला है, मोक्ष और सुख केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाला हैं, तथा जन्मसे निवारण दिलानेवाले इस जैन मंत्र 'णमोकार मंत्र' को हे जीव तुम बार बार जपो ।

दुनिया को परिवार को बार बार स्मरण करने की अपेक्षा एक बार णमोकार मंत्र को स्मरण कर लेना श्रेष्ठ है । क्योंकि दुनिया को याद करनेसे संसार की वृद्धि होती है । परंतु णमोकार मंत्र को जपनेसे संसार घटता हैं, और बुद्धि प्रखर होती है, अत: णमोकार मंत्र को श्रद्धा से जपो ।

मोह का बंधन

भीलों का सरदार यमदण्ड बड़ी सावधानीसे महाराज उपश्रेणिक को अपने घर ले गया। वहाँ उसकी पुत्री तिलोकवतीने उनका आतिथ्य सत्कार किया, तथा बड़ी कुशलतासे उनके घाव का उपचार करना प्रारम्भ कर दिया। ठीक ही है **"सज्जन पुरूषोंकी सज्जनता कहनेसे नहीं अपितु योग्य अवसर पर ही प्रमाणित होती है वास्तव में वे ही सज्जन हैं और वे ही दयालु हैं जो अपने द्वार पर आए हुऐ दुखी प्राणियोंकी वेदना को देखकर दूर करने में जुट जातेहैं।"** यथेष्ट उपचार से वे थोडे ही दिनोंमें स्वस्थ हो गए। तिलोकवती की कुशल सेवा भाव देख महाराज उसपर मुग्ध हो गए। अब उन्हें तिलोकवतीके बिना अपना जीवन कोरा ही दिखने लगा। एक दिन उन्होंने बड़ी आतुरता के साथ यमदण्ड के समक्ष तिलोकवतीके साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा। **"मोह का यही स्वभाव है कि वह जिसके प्रति सवार हो जाए फिर उसके बिना उसे क्षणभर भी चैन लेने नहीं देता।"** यमदण्ड ने कहां महाराज! कहां यह भीलपुत्री और कहां आप मगध नरेश, दोनोंमें कैसे जोड़ी बन सकती है? दूसरी बात आपकी अनेक सुन्दर रानियों के मध्य मेरी पुत्री कहां स्थान पाऐगी?

उपश्रेणिक - नहीं! ऐसा मत सोचो, मैं सभी रानियों के समान इसे भी स्थान दूँगा। आप इस बात की जरा भी चिन्ता ना करें।

यमदण्ड - महाराज ! सभी रानियाँ हमेशा इससे ईर्ष्या तथा कटुहास करेंगी।

उपश्रेणीक - बस ! बस !! निषाधराज !!! अब तुम इतना ही ध्यान रखो जो कोई इससें ईर्ष्या या परिहास करेंगा उसकी जिव्हा खीच ली जायेगी ।

यमदण्ड - हे राजन ! यदि भविष्य में इसके पुत्र को राज्य नहीं मिला तो यह कितनी दुखित होगी?

उपश्रेणीक - आप इसकी चिन्ता ना करें, इसकी ही सन्तान ही राज्य करेगी, जिसने मुझे जीवन दिया उसके पुत्र को क्या मैं राज्य नही दे सकूंगा ।

यमदण्ड - हे राजन ! यदि आप मुझे वचन द्वारा संतुष्ट कर दे तो मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हुँ ।

उपश्रेणीक - मैं वचन देता हूँ कि मेरे पश्चात् राजगृह का राजा तिलोकवती का पुत्र ही होगा।

अंत में तिलोकवती के साथ महाराज उपश्रेणिक का धूम-धाम से विवाह हो गया। कुछ दिनों पश्चात् तिलोकवती के साथ महाराज ने राजगृह की ओर प्रस्थान किया । नगरवासियोंने महाराज उपश्रेणिक व तिलोकवती का भावभीना स्वागत किया । सारे नगर में महाराज के आगमन की खुशियाँ मनाई गई ।

महाराज उपश्रेणिक एवं तिलोकवती आराम के साथ राजसी जीवन व्यतीत करने लगे उनका प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता गया ।

कालांतर में तिलकवतीने चिलाती पुत्र को जन्म दिया । सारे नगर में धूम-धामसे पुत्रोत्सव मनाया गया।

देखिए मोह का परिणाम जो अपने आगमसे पूर्व ज्ञानपर ऐसा पर्दा ड़ाल देता हैं कि जिसके कारण प्राणी हित-अहित योग्य-अयोग्य अथवा पूर्वापरके ज्ञान से शून्य हों, मोह के पाश में ऐसा बंध जाता है कि जिसके आगे फिर यह अपना सर्वस्व ही क्या प्राण तक न्योछावर कर देता हैं और अंत में पश्चाताप के आँसू बहाता हैं।

अतः हम सबको चाहिए कि कोई भी कार्य करने के पूर्व उसकी (भविष्यत्‌की) गहराईयों को अच्छी तरह से देखें, पश्चात् ही अपना कदम उठायें।

*****

गगन नगर कल्पं सङ्गमं वल्लभानाम्
जलद पटल तुल्यं यौवनं वा धनं वा ।
सुजन सुत शरीरादीनि विद्युत चलानि,
क्षणिक मिति समस्तं विद्धि संसारवृत्तम् ॥४४॥ २

ज्ञानार्णव

अर्थ - हे प्राणी ! प्यारी स्त्रियोंका समागम आकाश में देव द्वारा रचाये गए नगर के समान तुरन्त लुप्त हो जाने वाला है । तथा मेरा यौवन वह धन बादल के समान क्षणभर में ही नष्ट होनेवाला हैं। और तेरे स्वजन अर्थात् परिवार के लोग पुत्र शरीरादिक बिजली के समान चंचल है । इस प्रकार जगत की अनित्य अवस्था जान उसमें नित्यता की वृद्धि मत रख ।

❀ ❀ ❀ ❀

बेड़ियों से बंधा हुआ व्यक्ति कोसों दूर चल सकता हैं, परंन्तु मोह से बंधा हुआ व्यक्ति चार कदम ही नहीं चल सकता हैं ।

मोही आदमी का कभी कल्याण नहीं हो सकता है । मोही आदमी संसार के दलदल में फंसा रहता है । और उसी दलदल में रहकर अपने जीवन का अंत कर देता है, परन्तु आत्मकल्याण को उपलब्ध नही कर पाता है ।

अज्ञानी चिलाती

राजपुत्र चिलाती धीरे-धीरे बड़ा हुआ। एक दिन महाराज उपश्रेणिक ने उसके विद्याध्ययन कराने हेतु विचार किया और मंत्रियों से सलाह लेकर शुभ मुहर्त में उसे विद्याध्ययन हेतु आश्रम में भेजा। "ठीक ही है, प्रत्येक माता-पिता को अपने सन्तान के प्रति उन्नति की भावना होती है। वे हरप्रकारसे अपनी सन्तान को उन्नत बनाना चाहते हैं।" दूसरी बात यदि वे चाहते तो अपने राजमहल में भी विद्याध्ययन की पूर्ण व्यवस्था कर सकते थे किन्तु नहीं वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि गृह में रहते हुए पुत्र कभी भी विद्याध्ययन नहीं कर सकते हैं और न उनके गुरूजन करा सकते हैं। अत: उन्होंने राजपुत्र चिलाती को आश्रम में भेजा।

आश्रम में सभी की समान दिनचर्या होती है। चाहे वह राजपुत्र हो या अन्य कोई सामान्य ग्रामीण का पुत्र हो। आश्रम में सर्वप्रथम व्यवहारिक शिक्षा दी जाती हैं अर्थात् अपना काम स्वयं कर गुरूजनों की सेवा एवं सदाचार आदि की शिक्षा के पश्चात ही अन्य लौकिक शिक्षा दी जाती है। राजकुमार चिलाती अपने आश्रम में पहुँच गए वहाँ पर उनके गुरूने राजस्वी वस्त्राभूषण को हटवाकर ब्रम्हचारी भेष में रखा और अध्ययन कराना प्रारंभ किया। बहुत ही लगन तथा श्रम से अध्ययन कराया किन्तु चिलाती विशेष सफल नहीं हो सका। "विद्याध्ययन के प्रति पूर्ण श्रम करना हमारे

अधीन होता है किन्तु उसमें सफल होना ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपक्षम पर ही आधारित हैं।''

अध्यापक एक ही विषय दस लड़कों को एक ही साथ समान रूप से पढ़ाते हैं किन्तु विद्यार्थी की सफलता में भिन्नताऐं देखी जाती हैं इसे हम यथार्थ श्रम की हीनता मात्र पर ही नहीं टाल सकते अपितु कुछ कर्माधीन (भाग्याधीन) भी अवस्थाऐं हैं। कुछ समय पश्चात चिलाती विद्याध्ययन कर राजगृह नगर की ओर वापिस लौट आता है। किन्तु उसके अंदर राज्य संचालन की योग्यता न देख महाराज उपश्रेणिक को बड़ी चिंता हुई। वे मन ही मन सोचने लगे - चिलाती में राज्य संचालन की योग्यता नहीं है और मैं वचन से बंध चुका हूँ यदि मैं इसे राज्य नहीं देता हूँ तो सत्य जाता है और यदि राज्य देता हूँ तो वे अवश्य ही हमारे कुल में कलंक लगायेगा......इत्यादि प्रकार से वे दिन प्रतिदिन चिंतित रहने लगे।

देखिये विद्या भी कर्माधीन हुआ करती है गुरूजनों की अवहेलना, पुस्तकों के अनादर करने से, दूसरों के ज्ञान में विघ्न डालने से, अपने ज्ञान को छिपाने से, दूसरों के निर्दोष ज्ञान में दोष लगाने से तथा ज्ञान के साधन पेन, कापी, पुस्तक, टेबल, लाईट आदि के तोड़ने फोड़ने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है जिससे प्राणी अथक श्रम करने पर भी ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाता है, सदा असफल ही रहता है।

अतः हम सभी को चाहिए कि उपरोक्त दुर्गुणों का त्याग कर उनके विपरीत जो गुण हैं उन्हें धारण करें यहीं ज्ञान प्राप्ति का अमोघ मंत्र है।

तत्प्रदोष निह्नव मात्सर्यान्तराया सादनोपघाता ज्ञान दर्शनावर्णयाः ॥१०/६॥ मोक्षशास्त्र

१. तत्प्रदोष - किसी के निर्दोष ज्ञान में दोष लगाना।

२. निह्नव - जिनसे पढ़ा है उनका नाम छिपाना।

३. मत्सर्य - दूसरा कोई हमारे जैसा विद्वान न बन जाए और यदि बन गया हो तो ये हमसे आगे कैसे बड़ा इस भावना से उससे ईर्ष्या करना।

४. अन्तराय - दूसरे के ज्ञान में विघ्न ड़ालना।

५. आसाधन - धर्मोपदेश के अवसर पर शरीर या वचन द्वारा उसका निषेध करना।

६. उपघात - प्रशंसनीय ज्ञान में दूषण लगाना।

अतः उक्त ५ बातों से हमें सदा सावधान रहना चाहिए।

भाग्य की परीक्षा

महाराज़ उपश्रेणिक ने एक दिन अपने कक्ष में एक राजज्योतिषी को बुलाया और उससे भविष्य में होने वाले राजा के विषय में प्रश्न किया कि हमारे पश्चात राजगृह का राजा कौन होगा? राजज्योतिषी ने अपनी ज्योतिष शास्त्रानुसार पता लगाया कि अमुक पुत्र राजा होगा। किन्तु दोनों ही राजपुत्र है जिसका नाम नहीं बताऊँगा वहीं मुझे सतायेगा, इसलिए विवेक से ही काम लेना चाहिए अतः कुछ सोच विचार कर कहा महाराज जिस पुत्र में पाँच बातें पायी जायेगी वही आपके बाद राजा होगा। और वे पाँच बातें इस प्रकार है - (१) राजाज्ञा से सभी राजकुमार अपने अपने सिर पर शक्कर के घड़े को रखकर सिंहद्वार पर जाये, फिर भी ज़ो राजकुमार अपने सिर पर घड़ा न रख किसी नौकर के सिर पर घड़ा रखता हुआ जायेगा वहीं पुत्र राजा होगा। (२) जो राजपुत्र नवीन घट (सकोरे) को ओसबूंदों से भरेगा वह राजा होगा। (३) सभी राजकुमार एक साथ भोजन हेतु बैठें उन्हें विभिन्न व्यंजन परोसे जायें उसी समय उन पर भूखे कुत्ते छोड़ जाये फिर भी जो पुत्र डरकर न भागे एवं भोजन करता रहे वह राजा होगा। (४) नगर में आग लगने पर भी जो राजकुमार राजसिंहासन, छत्र, चमर को अपने साथ ले नगर से बाहर भागे वह राजा होगा।

(५) जो राजकुमार भोजन के बंद पिटारों एवं बंद घड़ों के जल को बिना खोले वा बिना तोड़े ही उसका भोजन वा जल पीले वह राजा होगा।

राजज्योतिषी की सारी बातों ने महाराज उपक्षेणिक को बड़े ही विस्मय में ड़ाल दिया। वे उक्त बातों को श्रवण कर बहुत आश्चर्य करने लगे, उनकी उक्त बातों की परीक्षा हेतु जिज्ञासा बढ़ती गयी। किन्तु वे सब बाते एक एक कर कुमार श्रेणिक में घटती गयी। ''तीव्र पुण्योदय होने पर, सारी विपरीत परिस्थितियों में भी, भविष्य कालीन सभी लाभों का संकेत होने लगता है।''

महाराज उपश्रेणिक की चिंता और अधिक बढ़ गयी। किन्तु ''चिन्ता करने से क्या चिन्ता का हल हो सकता है? नहीं अपितु वे और ही अधिक बढ़ती ही है परन्तु चिंता ग्रस्त प्राणी को इतना विचार कहाँ?'' उन्होंने समझ लिया कि अवश्य ही अब राज्य कुमार श्रेणिक को ही और तिलोकवती को दिया हुआ मेरा वचन झूठा हो जाऐगा। ''झूठ राजा के लिए प्राणोंसे भी अधिक हानिकारक होता है।'' महाराज उपश्रेणिक को इसका किंचित दुख नहीं था कि राज्य किसको प्राप्त होगा क्योंकि वे बुद्धिमान थे वे यह अच्छी तरह जानते थे कि जो पुत्र सर्वाधिक पुण्यात्मा होगा वह ही राज्य प्राप्त करेगा अन्य नहीं। किंतु दुख तो उन्हे इस बात का था कि मेरा वचन झूठा हो जाएगा, मैं अपने कुल में कलंकी समझा जाऊंगा, भविष्य मैं ही कलंकी विश्वासघातकी राजा के नाम से पुकारा

जाऊँगा। आखिर मे उनकी भूख, नींद एवं शरीर क्षीण होता गया। लेकिन मंत्रियों ने अपनी कुशलतासे महाराज की सभी चिन्ताओं को हल करने का उपाय खोज ही लिया।

देखिये राजा के सत्य को, उन्होने अपने सत्यवचन की पूर्ति में योग्य कुमार श्रेणिक की किंचित भी पर्वाह नहीं की और योग्यता शून्य होने पर भी चिलाती को राज्य देने को तैयार हो गए क्योंकि उनके सामने सबसे बड़ी समस्या सत्यवचन की थी किन्तु अब "**पछताऐं होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयी खेत।**"

अत: हम सभी को चाहिए कि प्रथम तो किसी को वचन दे ही नहीं और यदि देना भी पड़े तो उन्हे गहराईंसे पूर्वापर विचार करके ही देना चाहिए पश्चात् उन्हे पूर्णरूपेण निभाना चाहिए।

सत्यव्रतेन सस्याति, पवित्रं मानसं सदा।
प्रभुत्व वर्तति तस्य, सर्वेक्षामेव मानसे ॥१६॥३०

कुरल काव्य

अर्थ : देखिए जिस मनुष्य का मन असत्य से अपवित्र नहीं है, सत्य से पूर्ण समाहित है वह अवश्य ही सबके हृदय पर शासन करनेवाला होता है, अर्थात् हर प्राणियों का विश्वास उस सत्य बोलने वाले प्राणी पर ही होता हैं।

स्वामी भक्त मंत्री

महाराज उपश्रेणिक के समक्ष राज्य विषयक एक गहन चिंता थी। एक और था सत्य ओर दूसरी ओर थी पात्रता। वे अपनी इस चिंता को किसी के समक्ष भी व्यक्त नहीं कर पा रहे थे। चिन्ताओं के कारण उनकी विचित्र हालत हो गयी थी। ठीक ही है "चिन्ता साक्षात् अग्नि का ही प्रतिरूप होती है जो जीवित को भी जलाती है।" महाराज की यह हालत्त देख मंत्रियों ने बड़े अनुनय विनय के साथ वास्तविक कारण का पता लगा लिया। 'सच्चा स्वामी भक्त ही अपने विवेक एवं कुशलता से, भक्ति रूपी नाव में बैठ अपने स्वामी के हृदय की थाह पा सकता है, अन्य नहीं।' महाराज उपश्रेणिक ने अपने हृदय की सारी बात मंत्रियों को स्पष्ट बता दी। ठीक है 'अपने सच्चे हितैषी के समक्ष कौन अपनी सत्य बात नहीं बताता है ! अर्थात कोई भी अपने हितैषी को अच्छी बुरी बातें बताने में किंचित भी संकोच नहीं करते।'

अंत में मंत्रियों ने उन्हें धैर्य बंधाया और कहा कि हे प्रजा रक्षक आप निश्चित रहो, हम लोग अब अवश्य ही समाधान का शीघ्र ही कोई उपाय खोजते है। सेवक के रहते हुए आपको इतनी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है आपको यह शोभा नहीं देता इत्यादि। 'सच्चे सेवक का यही कर्तव्य है कि वह अपने स्वामी को हर तरह के दुखों को दूर करने का विश्वास दिलावें तथा उसे

अविलम्ब दूर कर अपने स्वामी को उत्साहित करे।'

मतिसागर मंत्री ने कुमार श्रेणिक के पास जाकर कुटिलता पूर्वक कहा - हे कुमार ! अपने पिता की चिंतित मुद्रा को क्या कोई साहसी वीर पुत्र देख सकता है? यदि नहीं, तो क्यों आप चुप चाप बैठे हो, कारण का पता क्यों नहीं लगाते हो? इत्यादि।

मंत्री की बात सुन कुमार श्रेणिक ने कहा - हे तात ! इसका कारण तो आप ही जानते होंगें मुझे उनकी चिंता का कुछ भी कारण समझ में नहीं आ रहा है, और न वे मुझे कुछ बताते ही हैं न जाने वे मेरे से क्यों इतने उदास है..... मतिसागर मंत्रि ने कहा - कुमार ! तुम्हें सावधान रहने की आवश्यकता है वे तुम्हारे ऊपर बड़े क्रुद्ध हैं उनका प्रचंड क्रोध बड़ता ही जा रहा है अनेक प्रकार से समझाने पर भी शान्त नहीं हो रहा है। मैं आपको यहीं संकेत देने आया हूँ कि आप किसी भी रीति से अविलम्ब इस देश से भाग जाओ, अन्यथा नहीं मालूम क्रोधावेश में महाराज आपको कौन सा दण्ड दे देंगे। मेरी यही प्रार्थना है और इसी में आपका तथा प्रजा का हित है, यदि आप जैसे धीर वीर कुशल पराक्रमी आज सुरक्षित हो जायेंगे तो अवश्य ही हम लोग भविष्य में आपको राजा के रूप मे देख फूले नहीं समायेंगे इत्यादि। मंत्री की बात कुमार श्रेणिक को फिट बैठ गयी उन्होंने कहा - हे तात ! ऐसा ही होगा, यही पुत्र का कर्तव्य है कि -'अपने ऊपर पिता का तीव्र क्रोधावेश देख तुरन्त ही उनके सामने न जावें, किन्तु उनका क्रोध शान्त हो जाए तब उनके

चरणों में उपस्थित हो विनय पूर्वक अपने अपराधों की जानकारी प्राप्त कर उनसे उनकी क्षमा मांगे और आगे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा ले।' इस प्रकार से कहकर वे प्रच्छिन्न रीति से, पाँच हजार सैनिकों के बीचसे निकल गए। पुत्र वियोग का यद्यपि महाराज उपक्षेणिक को दुख हुआ, किन्तु अपने वचन पूर्ति हेतु उसे भुला दिया । मंत्रियों की सलाह से उन्होंने चिलाती को युवराज बना दिया।

देखिए ! सेवक अपने स्वामी दुख दूर करने में छल बल आदि अनेक नीतियों का प्रयोग कर उन्हें निश्चित बनाता है किन्तु छल में विजेता की सराहना राजनीति भले ही करे परन्तु धर्म नीति नहीं कर सकती।

कर्तव्यमेव कर्तव्यम् प्राणै: कण्ठ गतैरपि ।
अकर्तव्यं न कर्तव्यम् प्राणै कण्ठ गतैरपि ॥

अर्थ - कण्ठ पर्यंत प्राण आ जाने पर भी अपने कर्तव्य को ही करना चाहिए किन्तु भले ही कण्ठ तक प्राण क्यों न आये तो भी अकर्तव्य (न करने योग्य) को नहीं करना चाहिए।

अनीति एवम् अन्याय का फल

युवराज चिलाती बचपन से ही माता पिता के अत्याधिक लाड-प्यार के कारण विद्यार्जन में विशेष सफल नहीं हो पाया था। तथा अशिष्ट बच्चों की संगति से अनाड़ी बन गया था। ''बालक तो गीली मिट्टी सदृश ही होते हैं माता पिता उन्हें संस्कार रुपी सांचे में ढालकर चाहे जिस प्रकार बना सकते है।'' यदि वे चाहें तो थोड़े से व्यामोह में पड़कर अपनी सन्तान को सुसंस्कार विहीन स्वेच्छाचार मय दुखी जीवन प्रदान कर सकते हैं और यदि वे चाहे तो लाड-प्यार के व्यामोह में न पड़ते हुए उन्हें अनुशासनशील, धार्मिक एवं सदाचारी बनाकर सुखी जीवन प्रदान कर सकते हैं। 'पुरूषार्थ करने पर भी यदि सफलता न मिले तो फिर उसे उसका दैव, भाग्य, होनहार या काललब्धि आदि समझना चाहिए। पुरूषार्थ करने के पूर्व ही काललब्धि की आशा में बैठने वाला प्राणी निरामूर्ख है उसने काललब्धि की वास्तविक परिभाषा अभी समझी ही नहीं।'

युवराज चिलाती का दैव ही ऐसा था कि माता पिता के अथक प्रयास करने पर भी उसके अन्दर राज्य संचालन की योग्यता नहीं आ पायी। युवराज बनते समय भी कोई सभासद या प्रजाजन संतुष्ट नहीं थे। कुछ समय पश्चात महाराज उपश्रेणिक की मृत्यु हो गई। जिससे युवराज चिलाती नें राज्य संचालन की डोरी सम्हाली। अब वह राजगृह नगर का राजा हो गया। किन्तु धर्म, न्यायनीति

में कुशल न होने के कारण उससे राज्य नहीं सम्हल सका। अन्याय एवं अनीति दिन प्रतिदिन फैलती गयी, अनाड़ी तो वह बचपन से था ही, और अब राजा बन जाने पर फिर किसका भय अर्थात और ही अधिक बिगड़ता गया।

प्रजा उसके दुर्व्यवहार से तंग हो चुकी थी। राजा के प्रति उसकी दिन प्रतिदिन उदासीनता बढ़ती जा रही थी, सभी मंत्रियों में एवं गणमान्य व्यक्तियों में एक यही चर्चा थी कि यदि राज्य की यही अवस्था बनी रही तो अवश्य ही राजगृह जैसा महानशक्तिशाली एवं वैभवशाली नगर एक दिन उजड़ जाएगा। इसकी यशोगाथा सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। इस बात से चिंतित हो सभी लोगो ने एक दिन एक गुप्त सभा की जिसमें नगरवासियों पर बीत रही समस्त घटनाओं का तथा राजा के अन्याय एवं अनीति पर विचार विमर्श करते हुए कुमार श्रेणिक को लाने का प्रस्ताव पास किया गया। परिणामस्वरूप एक पत्र में राजगृह के सारे वृत्तांत के साथ कुमार श्रेणिक को अविलंब राज्य सम्हालने की प्रार्थना लिखी गई। और उसे कुशल दूत द्वारा श्रेणिक के पास शीघ्र ही भेजा गया। 'अपने राजा के प्रति प्रजा की जब समस्त शक्तियाँ क्षीण हो जाती है। प्रजा में एक वह शक्ति होती है जो राजा को बना भी सकती है और मिटा भी सकती है।'

पत्र पाते ही कुमार श्रेणिक का हृदय करूणा से भर गया और अंत में प्रजा की प्रार्थना स्वीकार कर वें अविलंब राजगृह आ

गये। कुमार श्रेणिक के आगमन पर सारे राज्य में अपार हर्ष छा गया। किन्तु चिलाती का मुख निस्तेज हो गया। ठीक ही है .....। 'पुण्य के क्षीण हो जाने पर अधर्म एवं अन्याय का जन्म होता है जिससे महान से महान शक्तियाँ भी निस्तेज हो जाती है।' किसी सत्यमूर्ति के दर्शन से भी असत्य एवं अन्यायी का चेहरा फीका पड़ जाता है। अन्त में अपनी सुरक्षा का कोई भी उपाय न देख, कुछ धन वैभव लेकर चिलाती किसी दुर्ग में जा छिपा।

देखिए! प्राणी का जिस समय तीव्र पाप कर्म का उदय होता है तब अधर्म एवं अन्याय की बुद्धि उपजती है, जिसके कारण प्राप्त हुआ समस्त वैभव देखते ही देखते चला जाता है फिर भी प्राणी सावधान नहीं हो पाता है यह बड़ा आश्चर्य है।

अतः प्रिय बंधुओं तुम कभी भी अधर्म एवं अन्याय के कार्यों में मत फसो।

卐

न जहाति नरं छाया, तथा स पृष्ठवर्तिनी।
तथैव पाप कर्माणि, नाशोदकाणि देहिनाम् ।८/२१॥

कुरल काव्य

अर्थ - जिस प्रकार छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, बल्कि जहाँ जहाँ वह जाता है उसके पीछे पीछे लगी रहती है ठीक इसी प्रकार पाप कर्म पापी का पीछा करते है और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

अपमान का बदला

रा जकुमार श्रेणिक मंत्रियों की सलाह के अनुसार, माता पिता की बिना आज्ञा लिये ही, प्रच्छिन्न भेष में इस प्रकार से निकले की उन्हें कोई भी सैनिक वा द्वारपाल पहिचान नहीं पाये। "ठीक ही है बुद्धिमान प्राणी अपने ज्ञान का सम्यक् सदुपयोग कर किस परिस्थिति में सफल नहीं हो सकते? अर्थात् वे हर परिस्थितियों में सफल हो जाते हैं।

पैदल चलते चलते कुमार श्रेणिक नंदिग्राम पंहुच गये। वहाँ पर वेणुपद्म ग्रामवासी वणिक इन्द्रदत्त सेठ से उनका परिचय हो गया। कुमार श्रेणिक उनकी धर्मज्ञता पर बड़े प्रभावित हुए उन्होंने सेठ से कुछ समय तक मुझे भी साथ ले चलने की प्रार्थना की। कुमार श्रेणिक के सरल स्वभाव एवं वाकपटुता पर सेठ इन्द्रदत्त बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सहर्ष साथ चलने की अनुमति दे दी। कुमार श्रेणिक सेठ के साथ साथ चलने लगे। कुछ समय बाद उन्हें भूख सताने लगी अत: वे सेठ से आज्ञा ले उसी ग्रामवासी एक ब्राह्मण के घर गये। वहाँ पहुँचे जरूर, किन्तु ब्राह्मण बड़ा कंजूस निकला। उन्होंने उससे भोजन की याचना की, किन्तु कुमार का हृष्ट-पुष्ट शरीर देख उसने भोजन देने से इन्कार कर दिया। किन्तु कुमार ने भूख की वेदना व्यक्त करते हुए पुन: भोजन की याचना की, जिससे ब्राह्मण उत्तेजित हो गया और क्रोधित हो अनुचित

शब्दों का प्रयोग करते हुए कहने लगा - जा जा कहीं अन्यत्र जाकर कोई व्यापार करके ही उदर पूर्ति कर, अपने शरीर से श्रम करो, मेरी पसीने की कमाई है मैं तुझे एक अन्न का दाना भी नहीं दूंगा, निकल जाईये यहाँ से, एक भी क्षण तू यहाँ नहीं ठहर सकता, हटिये इत्यादि अनेक कटु शब्द कहें।

''अशुभ कर्म के उदय होने पर पेट भर भोजन भी नहीं मिलता अपितु मांगने पर कटुवचन ही मिलते है।'' कुमार श्रेणिक बालक तो थे ही साथ ही क्षत्रिय राजकुमार। ब्राह्मण के कटु शब्द कैसे सहन कर सकते थे उनका भी खून खोल उठा उन्होंने भी जोश पूर्ण शब्दों में कहा रे कंजूस विप्र ! क्या तूं मूझे नहीं जानता कि मैं कौन हूँ? 'द्वार पर आये हुए को पेट पर भोजन नहीं दे सकते तो मत दो किन्तु उसका तिरस्कार तो मत कर।'ध्यान रख! इस प्रकार के अपमान का फल तुझे बड़ा ही कष्टकारी होगा इत्यादि कह कुमार वहाँ से लौट गये। 'ठीक ही है भूखे रह जाना अच्छा है किन्तु किसी के द्वारा अपमानित होना अच्छा नहीं हैं।' कुमार और ब्राह्मण की जोशीली आवाज सुन आसपास के अनेक लोग एकत्रित हो गये किन्तु किसी ने भी कुमार से भोजन को नहीं कहा इससे कुमार का समूचे ग्रामवासियों के प्रति विद्वेष भाव हो गया। कालान्तर में कुमार श्रेणिक राजगृह के राजा हो गया और न्यायनीति पूर्वक राज्य करने लगे। अब उनका अशुभोदय समाप्त हो गया था। ''प्राणी के जीवन में शुभ और अशुभ का उदय रहट

के घड़ों की तरह सदा अस्थिर होता है। किन्तु अज्ञानी प्राणी इस रहस्य को न जानने के कारण ही उनमें हर्ष विषाद करता है।''

कालान्तर मे महाराज श्रेणिक को नंदिग्रामवासी ब्राह्मणों द्वारा किये गये अपमान का स्मरण आ गया, स्मरण आते ही पूर्व का सारा दृश्य उनकी आंखों के सामने झूलने लगा। देखते ही देखते उनकी मुखाकृति बदल गयी और चेहरे पर रोष व्याप्त हो गया।

देखिये ! थोड़ा सा भी अनादर आगे जाकर कितना बड़ा रूप धारण कर लेता हैं यह बात इस दृष्टांत से सिद्ध होती है। सारे इतिहास के पन्ने इसी से भरे पड़े हैं, द्रोपदी के द्वारा हुए थोड़े से अपमान ने ही महाभारत रच दिया तथा नारद के अपमान ने भी द्रोपदी को क्या क्या कष्ट नहीं दिये आदि आदि।

अत: सब को चाहिए की कभी भी किसी का अपमान न करें। यदि किसी का अपमान कर भी रहे तो उस समय विचार करना चाहिए कि यदि इसकी जगह हम होते तब उस समय कैसा लगता, अथवा जिसका हम अपमान कर रहे है यदि कल वह हमारा अपमान करेगा तब हम को कैसा लगेगा इत्यादि सोच विचार कर अपमान का त्याग करना चाहिए।

स्तब्धो विनाश-मुपयति नतोऽभिबृद्धिं
मर्त्यो नदी तट गतो धरणी रूहो वा ॥
गर्वस्य दोष मिति चेतसि संनिधाय,
नाहं करोति गुण दोष विचार दक्षः ॥९॥३ सु.र.सं.

अर्थ - नदी के तट पर स्थित वृक्ष के समान जो मनुष्य उद्धत रहता है वह नाश को प्राप्त होता है और जो नम्र रहता है वह समृद्धि को प्राप्त होता है इस प्रकार अभिमान के दोषों को अपने मन से उसकी बुराई का, चतुराई से विचार करने वाला पुरुष, अहंकार नहीं करता है।

सम्मान से अपमान का और अपमान से सम्मान का जन्म होता है। साधु, संत, त्यागी, व्रती। सम्मान अपमान दोनों में समभाव रखते हैं। जो दोनों में समभाव नहीं रखते वे साधु संत त्यागी व्रती नहीं फिर वे माया जाल की एक आकृति हैं। क्योंकि साधु की सम्पदा समता होती है। समता की परीक्षा समता में नहीं विषमता में होती है अतः समता भाव को रख कर अपनी साधुता को जीवित रखे।

सच्ची मानवीयता

महाराज श्रेणिक का प्रतिरोष बढ़ता गया। वे समस्त नंदिग्रामवासियों को अपने राज्य से अविलम्ब निकालना चाहते थे। वे इसमें एक मिनट का विलम्ब भी नहीं चाह रहे थे। ''जब किसी के प्रति श्रद्धा उठ जाती है तब उसका क्षण भर का भी सानिध्य वर्षों सदृश हो जाता है।'' उन्होंने अविलम्ब मंत्रिमंडल की आपात कालीन सभा की, और उसमें कहा कि - मैं ऐसे धूर्तों को जो द्वार पर आये अभ्यागतों का सम्मान नहीं करते है अपितु उनका अपमान एवं तिरस्कार करते हैं उन्हें अपने राज्य से निकालना चाहता हूँ । मै एक क्षण भी उन्हें अपने राज्य में स्थान नहीं दूंगा, आप लोग उन्हें अपमान करने का कड़क फल चखाओं जिससे वे अपमान करने के फल को अच्छी तरह जान जाए, और हमेशा के लिए सावधान हो जाए, तथा उन पर कड़क दण्ड देख अन्य ढुलमुल नीति वाले भी अपमान के वास्तविक रूप को समझ जायें।

इस विषय में आज की जरा सी भी ढील भविष्य में महान ढील सिद्ध हो जाएगी.....इत्यादि। महाराज श्रेणिक ने रोष पूर्ण स्वरों में बहुत कुछ कहा। अन्त में मंत्रियों ने कहा - हे प्रजा रक्षक ! आप बड़े नीतिवान एवं दयामूर्ति है - अवश्य ही अभ्यागतों को अपमानित करने वाले लोगों को कड़क दण्ड देकर देश से निकालना

चाहिए, किन्तु उन्हें दण्ड देने का या देश से निकालने का कोई न कोई तात्कालिक कारण भी होना चाहिए। कारण बिना उन्हें देश से निकालना उचित नहीं होगा, अपितु अपनी ही कीर्ति में कलंक लगेगा एवं बड़ी क्षति होगी इत्यादि। फल स्वरूप महाराज श्रेणिक ने मंत्रियों की प्रार्थना पर गहराई से ध्यान देते हुए कहा - ठीक है उन्हें कारण पाकर ही देश से निकालना उचित होगा। "सच्चे हितैषी वे ही होते है जो अवसर पर उचित सलाह देकर अपने हितु का हित करते हैं। सलाह न देने वाले या अवसर निकल जाने पर सलाह देने वाले सच्चे हितैषी नहीं कहे जा सकते।" महाराज श्रेणिक कारण खोजने की गहरी चिंता में निमग्न हो गये। वे ऐसा कोई उपाय खोज रहे थे कि जिससे नंदिग्रामवासियों को निरूत्तर ही रहना पड़े। फलतः उन्होंने कठिन से कठिन एवं असंभव तक प्रश्न अनेक बार समाधानार्थ नंदिग्राम वासियों के भेजे, और साथ ही समाचार भी भेजे कि यदि आप लोग इस प्रश्न का समाधान नहीं कर पाये तो देश से निकाल दिये जाओगे। इस देश के किसी भी कोने में आप लोगों को स्थान नहीं दिया जाएगा इत्यादि। किन्तु पुण्योदय से नंदिग्राम वासियों को अभय कुमार का पावन सानिध्य मिल गया जिनके कारण वे प्रत्येक प्रश्न का समाधान भेजते रहे।

देखिए ! सच्चे हितैषी कितने महान एवं स्वामी भक्त होते हैं जो कि अवसर आने पर यथार्थ सलाह देकर अपने स्वामी को किस प्रकार से हित करते हैं वास्तव में सच्चे हितैषी के समान

परोपकारी और कोई नहीं, धन्य हैं उनकी उदारता एवं स्नेह बुद्धि जो प्राणियों को बड़ी से बड़ी आपत्तियों से बचा लेती है। वे ही महान है जो इस संसार में अपने स्वामी को हित रूप मार्ग दर्शाने में सदा प्रयत्नशील रहते हैं। भले ही उस समय कितनी बार डाट फटकार तो सहन करनी पड़ती है किन्तु भविष्य में वे सदा आदर के पात्र हो जाते हैं।

अत: हम सभी को भी चाहिए कि हम भी मंत्रियों के समान अपने हितैषियों को सदा अवसर पर यथार्थ सलाह देते रहें एवं उनका निस्वार्थ पूर्ण हित रहें यही सच्ची मानवीयता है।

शिष्टे खसरं वीक्ष्य, यानुकम्पा विधहयते।
स्वल्पापि दर्शने किन्तु, विश्वस्मात् सा गरीयसी ॥२/११॥
कुरल काव्य

अर्थ - अवसर पर जो उपकार किया जाता है, वह देखने में छोटा भले ही हो परन्तु जगत में सबसे भारी है।

बुद्धिमत्ता की परीक्षा

सेठ इन्द्रदत्त के साथ चलते हुए रास्ते में कुमार श्रेणिक ने अनेक गूढ़ प्रश्न एवं रहस्यात्मक गूढ़ क्रियाऐं की - सर्व प्रथम उसने उन्हें (१) मातुल कहकर पुकारा, (२) जिव्हारथ पर चलने की प्रार्थना की, (३) जूता पहिन कर नदी पार की, (४) वृक्ष के नीचे छाया में छाता लगाकर बैठा, (५) एक विशाल नगर देखकर सेठ जी से पूछा कि यह नगर उजड़ा है या इसमें कोई रहता हैं? (६) एक पुरूष अपनी स्त्री को पीट रहा था उसे देख सेठ जी से पूछा यह स्त्री बंधी है या बंधेगी, (७) शव देख कर पूछा कि यह पहिले से मरा हुआ था या आज ही मरा है, (८) लहराते शालि धान्य के खेत को देखकर पूछा कि इसके स्वामी द्वारा यह फसल खा ली है या खायेगा, (९) हल चलाते किसान को देखकर पूछा कि इस हल के कितने स्वामी हैं, (१०) बेरी के वृक्ष देखकर पूछा कि इसमे कितने काँटे है। इत्यादि कुमार श्रेणिक की विचित्र क्रिया एवं अनोखे प्रश्न सुन सेठ इन्द्रदत्त ने अनुमान लगा लिया कि कुमार मूर्ख ही नहीं अपितु निरामूर्ख (महामूर्ख) है। उनकी क्रिया एवं बातों को देख ऐसे लगता है कि शायद इसका मस्तिष्क खराब है। पागल मनुष्य के अलावा और कौन ऐसी निस्सार एवं व्यर्थ की वार्ता करेगा - इत्यादि सोच विचार करते हुए वे अपने वेणूपद्म ग्राम में पहुंच गये। तथा कुमार श्रेणिक को नगर के बाहर तालाब

पर छोड़, सेठजी अपने घर की ओर चले गए। घर में उनकी इकलौती पुत्री नंदश्री ने उससे यात्रा की कुशलता पूछी और कहा कि आज आप क्या अनोखी चीज लाए हो? सेठजी ने कुमार श्रेणिक के पागलपन की सारी कहानी सुना दी। इसे सुन नंदश्री ने कहा नहीं नहीं वह पागल नही, अपितु बहुत बुद्धिशाली लगते हैं, आप उन्हे अच्छी तरह से समझ नही पाये। उनकी प्रत्येक बातोंसे बड़ा रहस्य भरा हुआ है, मैं आपको बताती हूँ।

सर्वप्रथम उन्होने आपको मातुल कह कर पुकारा, इसका मतलब (१) वह आपका सबसे अधिक स्नेही भाजन बनना चाहता था, क्योंकि मामा को सबसे अधिक स्नेह अपने भांजे से होता हैं इसलिए उन्होंने आपको मातुल (मामा) कहा है। (२) जिव्हारथ पर चलने का अर्थ है - किस्सा कहानी कहते हुए चले ताकि रास्ते के लम्बी दूरी तथा थकान महसूस ना हो। (३) नदी में काँच तथा कांटे आदि आँखोसे दिखते नहीं है, इसलिए नदी में वह जूता पहन कर गया। (४) वृक्ष पर बैठे हुए कोई पक्षी आदि गंदगी न कर दे इसलिए इसकी रक्षा हेतु छाया में भी छाता लगाया। (५) नगंर उजड़ा है या इसमें कोई रहता है इसका अर्थ यह है कि - इसमें कोई धर्मात्मा जन रहते है या नहीं। (६) स्त्री बंधी है या बंधेगीं इसका अर्थ - विवाहित है या अविवाहित है। (७) शव को देख यह प्राणी आज ही मरा है या पहले से ही मरा था इसका अर्थ - पहले से ही धर्म साधना रहित है या सहित। (८) खेत देख मालिक

फसल खा चुका या खायेगा इसका अर्थ - यदि उसने कर्ज लेकर फसल उगाई है तो समझो फसल खा चुका है अन्यथा खाऐगा। (९) हलके कितने स्वामी हैं इसका अर्थ - यह खेत किसी एक का है, साझे का है। (१०) बेरी के काँटे पूछने का अर्थ - वहां के प्राणी दुष्ट मनुष्यों के समान टेढ़े है या भद्रपुरूषों के समान सीधे हैं।

इस प्रकार नंदश्री द्वारा प्राप्त उत्तरोंसे सेठजी ने कुमार श्रेणिक को बड़ा ही बुद्धिशाली समझा एवं उसे छोड़कर आने के लिए पश्चाताप किया।

देखिए ! ज्ञान धन की महिमा, जिसके पास यह धन है उसके पास कुछ भी न होने पर भी सबकुछ है और जिसके पास यह ज्ञान धन नहीं है, उसके पास सबकुछ होने पर भी कुछ नहीं हैं। ज्ञानी सर्वत्र प्रशंसनीय एवं हर परिस्थितिमें निश्चिंत रहते है, एवं प्रसन्न रहते है।

अतः हम सभी को चाहिए कि हम भी कुमार श्रेणिक के समान अनुभवपूर्ण ज्ञान का अर्जन करें।

चौरादि दायाद भूपै,
रहार्य मर्च्यं सकलेऽपि लोगे ।
धनं परेषां नगनैरदृश्यं,
ज्ञान नरा धन्यतमा वहन्ति ॥७/८॥ सु. र. सं.

अर्थ - ज्ञान रूपी धन को चोर, डाकू चुरा नहीं सकते, भागीदार कुटुम्बी, पुत्रादि बांट नहीं सकते, राजा उसे हरण नहीं कर सकता। यह ज्ञान तीनों लोको में पूज्य है। दूसरे लोग इसे अपनी आँखो से देख नहीं सकते, ऐसे ज्ञान रूपी धन को श्रेष्ठ तम भाग्यशाली ही धारण कर सकते है।

सुनना ज्यादा कहना कम यह है विवेक
प्रकृति ने भी कर दिये कान दोय मुख एक

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

अनुभव एवम् ज्ञान

कुमार श्रेणिक की बुद्धिमता की मन ही मन सराहना करती हुई नंदश्री अत्याधिक प्रसन्न हो रही थी। ठीक ही है ''समान गुणवालों को पाकर कौन नहीं प्रसन्न होता है? अर्थात् सभी गुणवान प्रसन्न होते हैं। हाँ , यदि अप्रसन्न रहते तो वे ही हैं जिनमें वैसे गुण नहीं होते।'' नंदश्री ने कुमार श्रेणिक को खोजने हेतु एक कुशल दूती को भेजा साथ ही उनके ज्ञान की परीक्षा करने हेतु उसके नख में तेल देते हुए कहा कि इसे सारे शरीर में लगाकर शीघ्र ही आवें। ''परीक्षा किये बिना आखिर गुणवान का भी निर्णय कैसे हो सकता है।'' दासी सेठ जी के द्वारा बताये गये तालाब पर शीघ्र ही पहुंची एवं उनके द्वारा बताये गए लक्षणों से कुमार श्रेणिक को अविलम्ब खोज कर पहिचान लिया और विनम्र शब्दों में कहा सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री नंदश्री ने आपकी कुशलता पूछते हुए अपने गृह में आपको आमंत्रित किया है तथा मेरी कनिष्ठा अंगुली के नख में तेल भेजा है कि इसे आप अपने शरीर में लगाकर ही आये।

कुमार ने एक जल से भरे एक छोटे से गड्ढे की ओर संकेत करते हुए कहा कि इस तेल को इस गड्ढे में डाल दो और उनसे कह दो कि अवश्य ही मैं इसे सारे शरीर में लगाकर आपके गृह पर आऊँगा। जब दासी जाने लगी तब कुमार ने सेठ जी के घर का पता पूँछा, किन्तु दासी अपने कान में लगे हुए ताड़वृक्ष के पत्ते की

ओर संकेत करती हुए चली गयी। "समझदार को इशारा ही काफी होता है और इशारे को समझ लेना ही उसकी कुशाग्रबुद्धि का सूचक है।" कुमार श्रेणिक समझ गये कि जिस मकान में ताड़ का वृक्ष होगा वही इन्द्रदत्त सेठ का भवन है। पश्चात् उन्होंने जिस गड्ढे के जल में तेल ड़लवाया था उसी के जल में स्नान कर सेठ जी के भवन के निकट पहुँचे। वहाँ ताड़ वृक्ष को देख निर्णय कर लिया कि यही सेठ जी का भवन है किन्तु कुमार श्रेणिक के आने के पूर्व ही नंदश्री ने अपने गृह द्वार के आगे कीचड़ करवा दिया था तथा उस पर कुछ दूरी के अंतराल से हलके हलके पत्थर रखवा दिये थे और स्वयं अपने भवन के उपरिम भाग में बैठ चुपके से कुमार की प्रतीक्षा कर रही थी। इधर द्वार के आगे कीचड़ देख कुमार समझ गये कि इसमें अवश्य ही कुछ रहस्य है। पत्थरों की दूरी देख उस पर भी जाना उन्होंने अच्छा नहीं समझा क्योंकि गिरने पर उपहास ही होगा, अतः वे कीचड़ में प्रविष्ट हुए। नंदश्री यह दृश्य देख रही थी। उसने शीघ्र ही एक दासी को चुल्लु (हाथ में) में जल देते हुए कहा कि जाओ कुमार से कहो कि इस जल से सारा कीचड़ धोकर ही महल में प्रवेश करें। कुमार ने अपनी परीक्षा का अवसर जान पास में पड़ी हुई बांस की एक पंचट से सर्वप्रथम कीचड़ को छुटाया और दासी की चुल्लु के कुछ जल से पैर धोकर भवन मेंप्रवेश किया और शेष जल को लौटा दिया। इस प्रकार कुमार श्रेणिक की बुद्धिमता पर सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री नंदश्री बड़ी प्रसन्न हुई अंत में

प्रसन्न हो सेठ इन्द्रदत्त ने कुमार श्रेणिक के साथ पुत्री नंदश्री का विवाह कर दिया।

देखिये! शास्त्र पढ़ने या रटने मात्र को ज्ञानी नहीं कहा जाता है अपितु उसे अपने जीवन में उतार कर अनुभव में लाने का नाम वास्तविक ज्ञान है। अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ थोड़ा भी ज्ञान क्यों न हो तो भी वह बहुत है किन्तु अनुभव शून्य पुस्तकीय ज्ञान बहुत होने पर भी थोड़ा है पुस्तकीय ज्ञान साधन है तो अनुभव ज्ञान साध्य है। पुस्तकीय ज्ञान, पर (दूसरों का) ज्ञान है किन्तु अनुभव ज्ञान स्व (अपना) ज्ञान हैं। पुस्तकीय ज्ञान में आकुलता, दुख एवं मानादि कषाय होती है, किन्तु अनुभव ज्ञान में निराकुलता, सुख एवं निष्कषाय भाव होता है।

अतः हम सभी को पुस्तकीय ज्ञान के अनुसार चलते हुए अनुभव ज्ञान को बढ़ाते रहने का अभ्यास करना चाहिए यही बुद्धिमता की पहिचान है। क्योंकि जो कोई भी प्राणी बड़े बड़े शास्त्र वा पुस्तकें पढ़कर भी उसके अनुसार चिन्तन-मनन एवं अपने जीवन की चर्या नहीं बनाते हैं वे अवश्य ही अनुभव शून्य मूर्ख ही रहते हैं।

भवानुभव सम्पन्नो विद्यामितो भवन्नपि
पूर्व विमृश्य मेधावी व्यवहारं सदाऽऽवहेत् ॥७/६४॥कुरल काव्य

अर्थ - पुस्तकीय ज्ञान में यद्यपि तुम सुदक्ष हो फिर भी तुम्हे चाहिए कि तुम अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त करो और उसके अनुसार व्यवहार करो।

नारी का चातुर्य

वेणुपद्म नामक नगर में एक इन्द्रदत नामक सेठ रहते थे। वे बड़े ही भद्र परिणामी एवं धर्मात्मा थे। नंदश्री नामक उनकी एक पुत्री थी वह भी बड़ी विदुषी एवं सुशीला थी। एक दिन उसने अपनी दासी द्वारा कुमार श्रेणिक को अपने गृह में बुलाया तथा उसकी बुद्धि चातुर्यता की विभिन्न प्रकार से परीक्षा ली। "स्वर्ण की परख कसौटी पर कसने से ही होती है, सज्जन पुरूष भी उन्हीं पर सच्चा विश्वास करते हैं जिन्हें वें अपने अनुभव पूर्ण कुशल परीक्षा में सफल पा जाते हैं।" कुमार श्रेणिक नंदश्री की समस्त परीक्षाओं में सफल हुए।

नंदश्री ने कुमार श्रेणिक से सविनय भोजन करने की प्रार्थना की किन्तु कुमार श्रेणिक भी कहाँ शान्त रहने वाले थे, उन्होंने भी नंदश्री का बुद्धि चातुर्य देखना चाहा। "ठीक ही है एक दूसरे की परीक्षा लिये बिना एक दूसरे को परस्पर में विश्वास भी नहीं होता।" अतः कुमार ने कहा कि - हे सुन्दरी ! तुम्हारे आतिथ्य से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे गुणों की बराबरी करने वाला दुनियाँ में कोई नहीं है तुम धन्य हो, मानवता के सच्चे गुण तुमने प्राप्त किये है किन्तु क्या किया जाये मैं प्रतिज्ञा बद्ध हूँ अतः मैं तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ही भोजन करूंगा इत्यादि। कुमार श्रेणिक के मुख से यह वार्ता सुन नंदश्री ने कहा कि - हे कुमार ! वह प्रतिज्ञा कौन सी व

कैसी है कहिये मैं अवश्य ही पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगी। कुमार श्रेणिक ने कहा मेरे पास ये बत्तीस चावल है इनके द्वारा बने हुए विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों का ही भोजन करूँगा अन्य नहीं। यदि आप इस प्रतिज्ञा के अनुसार भोजन करा सकती हो तो मुझे आपका आमंत्रण स्वीकार है। नंदश्री ने कुछ विचार कर कहा - हाँ आप इन चावलों को मुझे दो मैं आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार ही भोजन कराऊँगी ऐसा कह कुमार से बत्तीस चावल ले लिये और उनके उत्तमोत्तम पुये बनाकर निपुणमति नामक दासी को बेचने हेतु दे दिये। दासी उन्हें बेचने हेतु जुआरियों के अड्डे पर ले गयी और वहाँ सभी के समक्ष कहने लगी कि देखिये इन पुओं को, इनमें ऐसा चमत्कार है कि जो भी इसे खायेगा उसकी विजय अवश्यभावी है इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है निश्चित ही वह जीतेगा इत्यादि। निपुण मति के वाक्जाल में आखिर एक जुआरी आ ही गया। 'जुआरियों को इतना विवेक कहाँ कि जिससे वे सार-असार का निर्णय कर सकें, वे तो लोभ में अंधे होते हैं किसी भी प्रकार से भी क्यों न हों मात्र धन प्राप्त हो, इतनी उनकी धुन होती है किन्तु इसमें वे निज की सम्पदा भी गँवा देते है।' उसने प्रचुर धन देकर उससे पुये खरीद लिए। निपुण मति नंदश्री के पास आयी और उसे पुओं से आगत द्रव्य को देते हुए सारी घटना कह सुनायी नंदश्री ने उस द्रव्य से विभिन्न प्रकार के सुन्दर एवं स्वादिष्ट व्यंजन बनाकर कुमार श्रेणिक को खिलाये। नंदश्री

की बुद्धिमता पर कुमार बड़े प्रसन्न हुए।

देखिये ! नारी की बुद्धिमत्ता का प्रभाव, जिसनें अच्छे बुद्धिमानों को भी भ्रम में ड़ालने वाले प्रश्नों का समाधान कर अपने गौरव को बढ़ाया। वास्तव में हम शान्ति के साथ अपने विवेक से काम लें तो हर कार्य में सफल हो सकते हैं । असफलता एवं आकुलता अविवेक में ही होती है।

इसलिए हम सभी को चाहिए कि हम जो भी कार्य करें उसे विवेक से खूब सोच विचार कर निराकुलता से (न अतिशीघ्र न अति धीमा) करें क्योंकि हड़बड़ा कर कार्य करने से प्राय: वे बिगड़ जाते है।

ना विचार्य क्वचित् किन्चिद् विधातव्यं मनीषिणा।
पूर्वं प्रारम्भ पश्चाच्च, शोचयकन्त हत बुद्धय: ।।७।।४७

कुरलकाव्य

अर्थ - भली रीति से पूर्ण विचार किये बिना किसी काम को करने का निश्चय मत करो। वे मूर्ख हैं जो काम प्रारम्भ कर देते हैं और मन में कहते हैं कि पीछे सोच लेंगें।

ज्ञान की परीक्षा

बुद्धिमानों को भी कभी प्रायः परस्पर होड़ होने लगती है वे एक दूसरे की परीक्षाओं द्वारा यह देखना चाहते हैं कि आखिर में किसका ज्ञान अधिक हैं। इसका निर्णय किये बिना उन्हें चैन भी नहीं पड़ती। ठीक ही है 'एक दूसरे की ज्ञान गरिमा को जान कर ही उनसे संबंध रखना बुद्धिमानों को उचित है।'

नंदश्री का मन अभी कुमार श्रेणिक के प्रति परीक्षाओं से भरा नहीं था। ''ठीक ही है जब तक परीक्षा फल सभी के सामने नहीं आ जाता तब तक ही उसमें विभिन्न प्रकार के संकल्प विकल्प सम्भव होते है किन्तु परीक्षा फल सामने आ जाने पर नहीं होते।'' नंदश्री ने कुमार श्रेणिक को एक ऐसा मूंगा दिया जिसका छेद बहुत टेड़ा तथा बारीक था साथ ही कहा मैं आपकी कुशाग्रबुद्धि तभी समझूंगी जब की आप इसमें बिना सुई आदि के सहारा लिए धागा पिरों देंगे। कुमार श्रेणिक ने मूंगे को देखा और कुछ सोचकर के कहा - अवश्य ! अवश्य ही मैं इसमें धागा पिरो (ड़ाल) दूंगा आप जरा भी इसमें संदेह न करें, अभी देखिये मैं इसमें धागा ड़ालता हूँ। ''बुद्धिमानों को असंभव एवं कठिन शब्द ही निस्सार भूत है अर्थात् वे जब अपनी बुद्धि चातुर्य से असंभव से भी असंभव कार्यों को सिद्ध कर लेते हैं तो फिर उन्हें कठिन कार्य को सिद्ध करना मात्र बायें हाथ का ही खेल हैं।''

कुमार श्रेणिक ने मूंगे के एक सिरे पर गुड़ सहित धागा लगाकर उस मूंगे का दूसरा सिरा आगे कर चीटियों के बिल के निकट रख दिया। चीटियों ने गुड़ के लालच में मूंगे में फंसे हुए धागे को आर पार कर दिया। यह देख नंदश्री को कुमार श्रेणिक की बुद्धिमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ साथ ही उसे बड़ा आनन्द भी हुआ अब उसके मन में कुमार के प्रति मोहभाव जाग्रत हुआ। वह मन ही मन विचार करने लगी कि हे भगवान ! मेरा विवाह कुमार श्रेणिक के ही साथ हो, इनसे ही मैं विवाह करूंगी अन्यथा मैं जीवन भर कुवाँरी ही रहूँगी इत्यादि। वह कुमार को देख नतमस्तक हो गयी एवं प्रेम की आकांक्षा में व्याकुल चित्त हो गयी। कुमार श्रेणिक भी उसके रूप सौंदर्य तथा बुद्धिमत्ता पर मुग्ध हो गये। ''मोह की डोर इतनी मजबूत एवं लम्बी होती है कि वह बड़े बुद्धिशाली एवं बलशाली प्राणी को अपने जटिल बंधनों में कस लेती है चाहे फिर वह कितनी भी दूरी पर क्यों न हो।''

''काम एक ऐसा बाण होता है जिसमें विद्ध होकर (फँसकर) प्राणी बुरी तरह से तड़फता है।'' इन्द्रदत्त सेठ भी बड़े बुद्धिशाली पुरूष थे वे कुमार श्रेणिक एवं नंदश्री की अवस्था देख उनके मनोभाव को समझ गये। फिर भी उन्होंने पृथक-पृथक उनसे विवाह विषयक चर्चा की एवं उनके समक्ष परस्पर विवाह करने का प्रस्ताव रखा। फलत: दोनों की सम्मति पाकर बड़े धूमधाम के साथ उनका विवाह कर दिया।

उक्त दृष्टांत में यह बात दर्शायी गयी है कि हमें प्राय: एक दूसरे के ज्ञान की गहराई को देखते रखना चाहिए दूसरे को नीचा दिखाने हेतु नहीं और ना ही अपने ज्ञान पर गर्व करने के ही लिए । अपितु उसमें यदि हमसे अधिक ज्ञान है तो मैं भी अपने ज्ञान की वृध्दि करूँ और यदि हम कम से कम ज्ञान है तो मैं अपने ज्ञान को मजबूत रखता हुआ उसे भी अपने योग्य बनाऊं इतने प्रयोजन से ही दूसरे के ज्ञान को देखना चाहिए।

यदुपात्तं स्वयं ज्ञानं, तद्विद्वत्सु प्रकाश्यताम् ।
अनुपात्तमथ ज्ञानं, विज्ञेभ्य: साधु शिक्ष्यताम् ॥४/७३ ॥

आ. कुंदकुंद

अर्थ - तुमनें जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानों के सामने खोल कर रखो और जो बात तुम्हें मालूम नहीं है वह उन लोगो से सीख लो जो उसमे दक्ष है।

द्रव्यांतर पर प्रभाव

नंदश्री के साथ विवाह हो जाने के पश्चात भी कुमार श्रेणिक बहुत दिनों तक अपनी ससुराल में ही रहें। विविध प्रकार के भोगोपभोगों को भोगते हुए आनंद के साथ उनका बहुत काल निकल गया। ''आनंद का बहुत काल भी अत्यल्प जैसा भासता है।'' कुछ दिनों के पश्चात् नंदश्री गर्भवती हुई। उसके सारे शरीर का सौंदर्य जाता रहा, आलस्य एवं प्रमोद उसे सताने लगा तथा भूख एवं नींद से भी उसकी रूचि समाप्त हो गयी। मुख पर चिंता की रेखायें दिखने लगी, ''प्राणी अपने हार्दिक भावों को व्यक्त करे या न करें किन्तु उसकी बहुत सी बाते चेहरे पर झलकने लग जाती है। मुखाकृति एक ऐसी खिड़की है जिसके द्वारा हृदयस्थ भावों के दर्शन हो जाते हैं।'' कुमार श्रेणिक नंदश्री की मुखाकृति को देख जान गये कि वह अवश्य ही किसी चिंता से चिंतित है। उन्होंने बड़े प्रेम एवं विश्वास के साथ नंदश्री से चिंता का कारण पूँछा तब नंदश्री ने कहा - स्वामिन् ! गर्भणी स्त्रियों में अधिकांशत: इच्छायें (विभिन्न विचार, दोहले) हुआ करते हैं। जो कुछ तो ऐसी भी होती है जिसकी पूर्ति संभव नहीं होती है। सदनारी का यहीं कर्त्तव्य है कि असंभव बातों को अपने स्वामी के समक्ष नहीं रखे और न उसकी पूर्ति की उनसे बार-बार प्रेरणा करें, क्योंकि ऐसा करने से वे भी चिंता के सागर में डूबने लगते हैं। इसीलिए मैंने

अपनी मनोभिलाषा को आपके सामने नहीं रखा क्योंकि यह असंभव है। कुमार श्रेणिक नंदश्री के मुख से हृदयस्पर्शी एवं विनयवार्ता सुन और भी अधिक विमोहित हो कहने लगे कि - प्रिये ! सद्नारी का यह भी तो परम कर्त्तव्य है कि वह अपने स्वामी से कुछ भी बात न छिपाये, जो भी हो उसे स्पष्ट कहे चाहे उसकी पूर्ति संभव हो या न हो इत्यादि प्रकार से उन्होंने नंदश्री को अपनी हार्दिक भावना सुनाने के लिए बाध्य कर दिया।

अपने सच्चे स्नेही की इष्टवार्ता किसके लिए मिष्ट नहीं लगती और कौन उसे पूरा नहीं करना चाहता? अत: वे चिंताये वास्तव में प्राणियों की मुखाकृति बदल देती है, उसकी चाल एवं स्वरों को तथा भूख और नींद तक बदल देती हैं। जिससे उसका स्वास्थ्य ही नहीं अपितु भाव भी बदल जाता है।

नंदश्री ने मिष्ठ शब्दों में कहा - हे स्वामिन् ! जिस दिन से मैंने गर्भ धारण किया है तभी से मेरे मन में सात दिन तक सारे राज्य में अभयदान देने की तीव्र अभिलाषा हो रही है। यही बात में नित्य स्वप्नों में देख रही हूँ। किन्तु इसकी पूर्ति कैसे हो? बस ! इसी चिंता में मै अपना समय बिता रही हूँ। यह सुन कुमार श्रेणिक ने सान्त्वना देते हुए कहा - प्रिये ! तुम किसी प्रकार की किंचित भी चिंता न करो। मै अवश्य ही ऐसा कोई उपाय खोजता हूँ कि जिससे शीघ्र ही तुम्हारे मनोरथ की पूर्ति होगी। इतना कह कुमार श्रेणिक वन की ओर चले गये।

देखिये ! एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कितना प्रभाव पड़ता है। यदि गर्भस्थ बालक पुण्यात्मा हैं तो माता के मन में प्रसन्न विचार धारायें जाग्रत होती हैं जिससे शुभ सूचक स्वप्न होते हैं तथा प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है किन्तु यदि कोई पापात्मा गर्भ में आता है तो सारा वातावरण विपरीत हो जाता है।

अतः हम सभी को अनवरत पुण्य साधना में संलग्न रहकर निष्कांक्षित पुण्यार्जन करना चाहिए कि जिससे अगले जन्म की प्रभात बेला में मंगल सूचक शुभ शकुन प्राप्त कर कल्याण मार्ग का भाजन बनें।

卐 卐 卐 卐 卐

इत्थं मतिश्रुतयुतावधि बोधनेत्रे,
जाते स्वयंभुवि तदा स्वयमेव बुद्धे ।
आकम्पिता सन मभूद मरेन्द्र वृन्दं,
सर्वार्थसिद्धि सुर पर्यव सानुमाशु ॥४६/१६॥

हरिवंशपुराण

अर्थ* - *इस प्रकार मतिश्रुत और अवधि ज्ञान रूपी नेत्रों से युक्त स्वयंभू भगवान (मुनिसुव्रत) स्वयं प्रतिबुद्ध (विरक्त) हुये तब सर्वार्थ सिद्धि तक के समस्त इन्द्रों के आसन शीघ्र कम्पायमान हो गये।

वीर पराक्रमी श्रेणिक और उनका पुरूषार्थ

वन में भ्रमण करते हुए कुमार श्रेणिक किसी एक दिन नदी के किनारे बैठे हुए चिंता सागर में निमग्न थे। वे सोच रहे थे कि मैं नंदश्री की मनोभिलाषा को कैसे पूर्ण करूँ। ऐसा कौन सा कार्य है जिसे करने से मैं अपने साध्य की सिद्धि कर सकूं इत्यादि सोचते हुए वे पंचपरमेष्ठि के ध्यान मे निमग्न हो गये। कुछ ही क्षणों में उन्हें नगर से आती हुई बचाओ-बचाओ भागो-भागो इत्यादि कोलाहल की आवाज सुनाई पड़ी। जिसे सुन वे चौंक उठे और करूणार्द हो उस पर दौड़े उन्होंने वहाँ पहुंच कर दूर से देखा कि महाराज वसुपाल का एक हाथी मद से उन्मत हो गया और उसे अपने बंधन को तोड़ नगर में क्षोभ मचा रहा है उसने अनेक मकान गिरा दिये हैं अनेक वृक्षों को उखाड़ फेका है तथा अनेक नर नारियों को कुचल दिया है फिर भी वह प्रजा की ओर क्रूरता के साथ दौड़ता जा रहा है जिसके भय से प्रजानन त्राहि-त्राहि कर रहे है। यद्यपि अनेक महावत उसे बस करने में प्रयत्नशील हैं तो भी वे सफल नहीं हो पा रहे हैं इत्यादि देख वे पंचपरमेष्ठि का स्मरण कर गजराज के सम्मुख बढ़े। हाथी भी कुमार श्रेणिक को सामने आता देख सूंड ऊपर उठाकर श्रेणिक की ओर दौड़ा। श्रेणिक ने गजराज से युद्ध किया तथा भीषण प्रहारों से उसे अपने बस में कर लिया देखते ही देखते मदोन्मत्त गजराज क्षण भर में शान्त हो गया तथा अपने स्वामी की

तरह कुमार से प्रेम करने लगा।

'पुण्यात्मा प्राणी के समक्ष ऐसी कौन सी वस्तु है जो अपने आप में कठिन हो, ऐसी कौन सी बात है जिसका समाधान न हो, तथा ऐसा कार्य है जो संभव न हो।' श्रेणिक कुमार प्रसन्नता के साथ हाथी पर सवार हो राजमार्ग से राजमहल की ओर बढ़े। नगरवासियों को कुमार की वीरता पर बड़ा आश्चर्य हुआ। जगह-जगह वे परस्पर में कुमार की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। कुमार श्रेणिक जयघोष के साथ राज-दरबार में पहुंचे। राजा वसुपाल ने कुमार श्रेणिक का यथायोग्य सम्मान किया, एवं उनके वीर पराक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की साथ ही कहा, वत्स ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मांगो क्या मांगना चाहते हो किन्तु कुमार चुप रहे। ठीक ही है "वीर पुरूष किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते। हाथ फैलाने को वे मरने से भी बदतर समझते हैं। दूसरों के सामने हाथ फैलाना ही अपनी महानता, वीरता आदि को बेच कर तुच्छता एवम् तिरस्कार को खरीदना है।" किन्तु कुमार को मौनस्थ देख इन्द्रदत्त ने कहा - महाराज ! कुमार श्रेणिक अपनी गर्भणी स्त्री के दोहद (दोहले) पूर्ति के लिए ही घर से निकले थे। वर्तमान से उन्हें दोहद पूर्ति की ही सबसे बड़ी आवश्यकता है। राजा ने पूछा क्या दोहद हुआ है। सेठ ने कहा - महाराज सारे राज्य में सात दिन तक का अभयदान.....। राजा ने कहा ऐसा ही होगा और आज्ञा दी कि मंत्रियों सारे राज्य में सात दिन तक के लिऐ अभयदान की घोषणा करें। इस बात पर

कुमार श्रेणिक बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने महल की ओर प्रस्थान किया। नंदश्री भी इच्छा होने पर बड़ी प्रसन्न हुई। कालान्तर में उन्होंने पुत्र प्रसव किया जिसका नाम (अभयदान के कारण) अभयकुमार ही रखा गया।

देखिये ! वीर पुरूषों का पराक्रम कि वे बड़ी से बड़ी आपत्ति आने पर भी किसी के समक्ष हाथ नहीं फैलाते वे पुरूषार्थ करके ही अपने कार्य को सिद्ध करते हैं।

अतः हम सभी को चाहिये कि कभी भी कैसा भी संकट क्यों न उपस्थित हो, तो भी शान्ति से समता पूर्वक सहन करते हुए किसी के समक्ष हाथ न फैलाये।

सुनीतिं वेत्ति यः प्रायः परस्वाद् विमुखो भवन् ।
तद् गृहं ज्ञात माहात्म्या, लक्ष्मीरन्विष्य गच्छति ।।९।।१८।

आ. कुंदकुंदाचार्य

अर्थ - जो बुद्धिमान मनुष्य न्याय की बात को समझता है और दूसरों की वस्तुओं को लेना नहीं चाहता है, लक्ष्मी उसकी श्रेष्ठता को जानती है और उसे ढूंढती हुई उसके घर जाती है।

नान्यथा मुनि भाषणं

एक दिन महाराज श्रेणिक राज सिंहासन पर बैठे हुए राज्य कार्य मे संलग्न थे। उसी समय अचानक ही आकाश मण्डल से जंबू कुमार नामक एक विद्याधर उतरा। उसने महाराज श्रेणिक को नमस्कार किया और कहने लगा कि - हे राजन्! जंबूद्वीप की दक्षिण दिशा में एक केरला नामक नगर है। वहाँ के राजा मृगांक बड़े कुशल शासक है। उनकी पट्टराणी का नाम मालतीलता है। उन दोनों के विलासवती नामक सुन्दर कन्या है। कन्या की यौवन अवस्था देख महाराज मृगांक को उसके विवाह की चिंता हुई। "कन्या की जिम्मेदारी जब तक किसी विश्वस्त प्राणी को नहीं सौंप दी जाती है जब तक माता पिता को अहर्निश चिंता का शूल चुभता ही रहता है।"

उक दिन उन्होंने किसी अवधि ज्ञानी मुनिराज से उसके वर के विषय में पूँछा - "मुनिराज सांसरिक कार्यों से विरक्त होते हैं वे प्रायः परमार्थ की साधना में लगे रहते है फिर भी किसी धर्मात्मा पर आयी आपत्ति जो उसे धर्म मार्ग से विचलित करने के कारण हो उसे भी दूर करने में पूर्ण प्रयास करते ही है।" मुनिराज ने कहा - हे राजन! विलासवती का विवाह मगध नरेश श्रेणिक के साथ ही होगा। राजा मृगांक को महाराज के वचनों पर पूर्ण विश्वास था वह जानता था कि **"नान्यथा मुनिभाषणम्"** मुनियों के वचन कभी भी

अन्यथा नहीं होते। अन्त में विनयपूर्वक मुनिराज को नमस्कार कर अपने नगर लौट आये। हे राजन ! तभी से उन्होंने अपनी पुत्री को आपको देने का निश्चय कर लिया है किन्तु हंसद्वीप का राजा रत्नचूल उससे विवाह करना चाहता है, बहुत बार मना किये जाने पर वा समझाये जाने पर भी वह नहीं मान रहा है अब उसने विशाल सेना के साथ केरला नगरी को घेर लिया है फिर भी महाराज मृगांक उसे अपनी कन्या नहीं देना चाहते हैं। यह सब मैं स्वयं देखकर आया हूँ इसलिए आप को सुना रहा हूँ आप जैसा भी उचित समझे वैसा करें। मैं अधिक समय तक नहीं रूक सकता।

विद्याधर के वचन सुन महाराज श्रेणिक ने अपने सेनापति को बुलाया और सेना तैयार करने को कहा, साथ ही यह भी कहा कि हम सभी को शीघ्र ही केरला नगर की ओर प्रस्थान करना है अविलम्ब सेना तैयार की जाए...... इसी बीच जंबूकुमार ने कहा - हे महाराज ! आप की गति कितनी? आप भूमिगोचरी है केरला नगरी यहाँ से बहुत दूर है वह विद्याधरों की नगरी है विद्याधर की शीघ्रता से पहुंच सकते है। इसलिए आप यहीं रहें - मैं ही अतिशीघ्र जाता हूँ आप आज्ञा दे इतना कह विद्याधर आकाश मार्ग से गमन करता केरला नगरी जा पहुँचा।

महाराज श्रेणिक भी ससैन्य केरला नगर की ओर बढ़े। कुछ दिन अनवरत चलते रहने से रास्ते में अनेक पड़ाव ड़ालते हुए वे एक दिन विद्याचल की अटवी तक पहुंच गये और वहाँ कुरलाचल

में वे ठहर गये। जंबूकुमार विद्याधर केरला नगरी में पहुँचा वहाँ उसने केरला नगर को चारों ओर से शत्रुसैन्य से घिरा देखा तब शीघ्र ही कुशलता पूर्वक रत्नचूल राजा के पास गया और उनसे कहने लगा - हे राजन ! आप बड़े ही बुद्धिमान एवं न्यायशील राजा हैं आपको किसी के द्वारा बिंना दी हुई वस्तु को जबरन लेना शोभा नहीं देता। पूज्य मुनिराज के वचनानुसार महाराज मृगांक, पुत्री विलासवती को राजा श्रेणिक को दे चुके है ..... "मुनिराज कभी भी मिथ्या नहीं बोलते उनके वचन सदा सत्य होते है।" यह सब जानते हुए भी क्यों व्यर्थ में सेना का संहार कर रहे ..... इत्यादि। जंबूकुमार की बातों को सुनकर रत्नचूल पर उल्टा ही प्रभाव पड़ा। ठीक ही है " विषैले सर्प को दूध पिलाने पर भी वह विष ही उगलता है।" राजा रत्नचूल जंबूकुमार की वार्ता सुन बहुत ही क्रोधित हुआ और उसने उससे युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया अर्थात दोनों में घमासान युद्ध हुआ।

अन्त में जम्बूकुमार ने आठ हजार शत्रु सैनिकों पर विजय प्राप्त कर राजा रत्नचूल को बंदी बना लिया और महाराज मृगांक के चरणों में उसे ड़ालकर सारा वृत्तांत सुनाया।

जम्बूकुमार का असाधारण पराक्रम देख महाराज मृगांक बड़े ही प्रसन्न हुए उन्होंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं उससे सलाह लेकर पाँच सौ विमानों के साथ पुत्री विलासवती को तथा बंदी रत्नचूल को भी साथ लेकर राजगृह की ओर प्रस्थान किया।

कुरलाचल की तलहटी से गुजरते ही जम्बूकुमार की दृष्टि महाराज श्रेणिक पर पड़ी, उन्हें देखते ही जम्बूकुमार ने महाराज मृगांक को संकेत किया। संकेत पाते ही सभी विमान वहाँ उतरे। दोनों राजा एवं सेना का आपस में स्नेह पूर्ण मिलन हुआ, एक दूसरे की कुशल वार्ताएँ हुई। शुभ मूहुर्त में विलासवती का महाराज श्रेणिक के साथ उत्सव-पूर्वक विवाह हुआ। पश्चात् सभी ने अपने-अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

देखिये ! मुनियों के वचनों का प्रभाव-मुनिराज सत्य महाव्रती होते है, वे क्रोध-लोभ-भय-हास्य (मजाक) से पूर्णतः विरक्त होते हैं उनके वचन आगमं (शास्त्र) के अनुसार होते हैं वे पाप से सदा भीरू (भयशील) रहते हैं इसलिए उनके वचन सदा प्रामाणिक ही होते हैं। ऐसे मुनिराजों से ही सारा धरातल पवित्र है। उक्त विशेषतायें अन्यों में पूर्ण रूपेण संभव नहीं होती इसलिए दूसरों के वचन भजनीय (प्रमाणित हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते) है।

अतः सभी को चाहिए कि सदा निर्ग्रन्थ मुनिराजों के आगमानुसार वचनों के प्रमाण मानते हुए आत्म कल्याण के पथिक बनें।

सत्तां विज्ञात तत्वानां, सत्य शीलावलम्बिनाम्।
चरण स्पर्श मात्रेण, विशुद्ध्यति धरातलम्॥२३/९॥

ज्ञानार्णव

अर्थ - जो महापुरूष सत्य वचन बोलने वाले है, तत्वों के यथार्थ स्वरूप को जानते है और सत्य शीलादि के अवलंबी हैं उनके चरणों के स्पर्श मात्र से यह धरातल पवित्र होता है।

स्व सिद्ध्यर्थ प्रवृत्तानां, सतमपि च दुर्धिय।
द्वेष बुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते, केचिज्जगति जन्तवः ॥३२/१॥

ज्ञानार्णव

अर्थ - इस जगत में अनेक दुर्बुद्धि ऐसे होते हैं जो अपनी सिद्धि के लिए मोक्ष मार्ग पर चलने वाले धर्मात्मा पुरूषों (मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक आदि) से द्वेष बुद्धि रखते हैं।

परम हितैषी करुणामूर्ति

किसी एक दिन सेठ इन्द्रदत्त अपनी पुत्री नंदश्री तथा दहेला (नाती) अभयकुमार को साथ ले वेणुपद्म ग्राम से राजगृह नगर की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें नंदिग्राम नामक एक ग्राम पड़ा उसमें सर्वाधिक ब्राह्मण ही रहते थे। इसी ग्राम में सभी ने रात्रि विश्राम किया। किन्तु समस्त नगरवासियों की शोकाकुलित अवस्था देख कारण का पता लगाया। "किसी को दुखी अवस्था देख कौन दुख का कारण नहीं पूछता है। किन्तु पूछना उनका सार्थक है जो उनके दुख को दूर करने में परम सहायक होते है।" ब्राह्मणों की शोकाकुलित अवस्था का मुख्य कारण महाराज श्रेणिक की कोप दृष्टि थी क्योंकि किसी समय नगरवासियों ने उनका अपमान एवं उपहास किया था। इसी कारण से वे उन्हें अपने देश से निकालवाना चाहते थे उन्होंने एक दिन राजसभा में कहा कि - जो प्राणी अपने द्वार पर हुए अतिथि का सम्मान नहीं करते अपितु उनका करते हैं ऐसे अभिमानी, लोभी एवं दूराचारी के लिए राज्य में कहीं भी स्थान नहीं देना चाहिए। उन्हें तो अपने राज्य से निकाल देना ही उचित है। नीति शास्त्रों में कहा है कि " जो राजा अपराधियों को उचित दण्ड नहीं देता वह स्वयं दण्ड का अधिकारी है। क्योंकि दुराचारी का आश्रय देना दुराचारण को पुष्ट करना एवं सदाचारी को उस ओर झुकाना है।" अतः ऐसे दुराचारियों को सड़े पान की

भांति निकालकर दूर फेंक देना ही उचित है। किन्तु मंत्री लोग भी बड़े दूरदर्शी होते हैं वे हर स्थिति की सच्ची जानकारी एवं सलाह दे प्रति समय राजा का बड़ा हित करते रहते हैं। उन्होंने महाराज श्रेणिक से निवेदन किया कि, हे प्रजा पालक ! राजनीति यह भी तो कहती है कि " बिना किसी कारण पाकर ही निकालना उचित है।" मंत्रियों की बात सभी को ठीक लगी। ठीक ही है "सच्चे हितैषी वे ही होते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर अपने स्वामी को उचित एवम् आवश्यक सलाह देते है एवम् उन्हें विनम्रता से उचित कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते है।" राजा ने भी मंत्रियों की उचित सलाह की सराहना करते हुए कारण पाकर ही नंदिग्रामवासियों को नगर से निकालना चाहा। अब महाराज श्रेणिक ब्राह्मणों को देश से निकालने हेतु षडयंत्र रचने लगे। बस इसी बात को सुन नंदिग्राम वासी चिंतित थे। ब्राह्मणों की दयनीय अवस्था देख उनका हृदय करूणा से भर गया ठीक ही है। "सम्यक्दृष्टियों में अनुकंपा नामक गुण स्वभावतः ही हुआ करता है दया-दया कहने मात्र से कोई दयावान नहीं बन जाता हैं अपितु हार्दिक करूण भाव से ही दयावान कहा जाता है।" दया, अहिंसा, करूणा, अनुकम्पा ये सभी एकार्थवाची हैं जो सम्यक्दृष्टि में नियम से होते ही हैं भले ही उनकी मात्रा कितनी ही क्यों न हो। अतः अभय कुमार ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि आप लोग किसी भी प्रकार की चिंता न करें, हमारे जीते जी आप लोगों का कुछ भी नहीं होगा। सभी लोगों ने

अभयकुमार से कुछ दिन ठहरने की प्रार्थना की। कुमार ने भी आवश्यकता समझ ठहरने की स्वीकृति दे दी।

देखिये ! अभयुकुमार की करूणा। जिन्होंने नंदिग्रामवासियों की रक्षा हेतु राजमहल के सुखों को तिलांजली देकर टूटी-फूटी झोपड़ी में रहकर भी उनकी पूर्ण निष्ठा के साथ रक्षा की।

अत: सभी का कर्त्तव्य है कि हम भी अनेक सुखों के अभाव एवम् दुखों के प्रादुर्भाव की स्थिति भी प्राप्त होने पर अपने धर्म को न भूलें।

सत्यकृत्यं सर्वदा कार्यं यदुदर्के सुखावहम्।
पूर्ण सक्ति समाधाय, महोत्साहेन धीमताम्॥३/४॥

आ. कुंदकुंद

अर्थ - सत्कर्म करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और पूर्ण उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

परीक्षा बकरे की

महाराज श्रेणिक का क्रोध दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। वे अहोरात्र उस उपाय की खोज में डूबे थे जिसके द्वारा नंदिग्रामवासी ब्राह्मणों को निरूत्तर कर अविलम्ब देश से बाहर निकाल जा सके। इस चिंता ने उनकी भूख एवम् नींद दोनों को समाप्त कर दिया था। अत: उन्होंने एक उपाय खोज ही लिया, और दूत को आदेश देते हुए कहा - दूत ! तुम इस बकरे को साथ लेकर शीघ्र ही नंदिग्राम जाओं और वहाँ के समस्त नगरवासियों को कह दो कि मगधनरेश ने यह बकरा भेजा है इसका इस तरह से आप लोग पालन करें कि जिससें यह न तो मोटा हो सके और न पतला। साथ ही ध्यान रखें महाराज श्री की उक्त आज्ञा का पालन न करने पर देश से निकाल दिये जाओगे। "अज्ञानता के कारण प्राणी दूसरों के विषय में जैसा सोचता है उसके तदनुकूल कर्मोदय न होने पर वैसा नहीं कर पाता है। किन्तु वह इस बात को जानता कहाँ है।"

ग्रामवासियों ने जैसे ही महाराज श्रेणिक की आज्ञा सुनी वैसे ही उनके होश हवास उड़ गये। वे सोचने लगे एवं आपस में वार्ता करने लगे कि यह बात कैसे संभव हो सकती है कि बकरा न मोटा हो पाय और न पतला? उसके लिए यदि पेट भर खिलाया जाए तो मोटा हो जाएगा और यदि उसे कम खाने को दिया जाए तो

तो पतला हो जाएगा। जैसा को तैसा कैसे रह सकता है? इत्यादि ऊहा पोहों के कारण समस्त प्राणी बड़े दुखी थे एवम् उनके चेहरे उदास थे।

एक दिन अभयकुमार ने उन सब नगरवासियों से चिंता एवम् उदासी का कारण पूछा। ब्राह्मणों ने भी अपनी चिंता का वास्तविक कारण कह सुनाया। "ठीक ही है अपने सच्चे हितैषी के समक्ष ही हृदय की सभी बाते कहीं जाती है।" अभयकुमार ने सान्त्वना देते हुए कहा कि आप लोग निश्चित होकर बकरे का अच्छी तरह से पालन करो उसे दिन में खूब खिलाओं किन्तु शाम के समय उसे बाघ (शेर) के सामने खड़ा कर दिया करो ऐसा करने से बकरा न तो मोटा हो सकेगा और न पतला। "ज्ञान एक ऐसा अमोघ अस्त्र है जिससे समस्त संकटों का परिहार किया जा सकता है। तथा ज्ञान एक ऐसा रत्न है जिससे बहुमूल्य एवं अमूल्य पदार्थों को भी खरीदा जा सकता है। ज्ञान प्राणी को सर्व सुखी एवं जगत पूज्य बना सकता है।" समस्त नगरवासियों ने अभयकुमार द्वारा बताये गये मार्ग का अनुशरण किया। पश्चात् कुछ ही दिनों के बाद वे राजाज्ञा से बकरे को लेकर राजसभा में उपस्थित हुए एवं बकरे को राजा के समक्ष खड़ा कर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। महाराज श्रेणिक ने बकरे की गहरी निगाहों से देखा और जैसा था वैसा पाकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

देखिये ! पुण्य के तीव्र उदय से क्षुद्र शक्ति वाले ब्राह्मणों ने

महा पराक्रमी महाराज श्रेणिक को भी निरूत्तर कर दिया। पुण्य कोई अन्य वस्तु नहीं है अपितु निष्कामभाव से की गयी हार्दिक धर्म साधना का ही प्रत्यक्ष फल है।

अतः हम सभी को चाहिए कि हम भी निश्कांचित भाव से यथेष्ठ हार्दिक धर्म साधना करते हुए ऐहिक एवं पारमार्थिक फल को प्राप्त करें।

त्वां देव मित्थमभिवन्ध कृत प्रणामों,
नान्यत् फलं परिमितं परिमार्गयामि।
त्वय्येव भक्ति मचलां जिन में दिशत्वं,
सा सर्व मभ्युदय मुक्ति फलं प्रसूते ॥३१६॥ पूर्व ७

श्री जिन सेनाचार्य

अर्थ - हे देव ! इस प्रकार आपकी वंदना कर मैं आपको प्रणाम करता हूँ और उसके फल स्वरूप आपसे किसी सीमित अन्य फल की याचना नहीं करता हूँ। किन्तु हे जिन आप में ही मेरी भक्ति सदा अचल रहे यही प्रदान कीजिए क्योंकि वह भक्ति ही स्वर्ग तथा मोक्ष के उत्तम फल उत्पन्न कर देती हैं।

बुद्धि की चतुराई (बावड़ी)

महाराज श्रेणिक चिंतित थे। वे सोच रहे थे कि नंदिग्रामवासियों को किस उपाय से पराजित किया जाये? मैं जो भी उपाय खोजता हूँ उसे वे यूं ही पूर्ण कर देते हैं, अब उनके समझ असंभव से भी प्रश्न भेजना चाहिए, फिर देखता हूँ उनकी बुद्धिमत्ता एवम् चतुराई को। उन्होंने कुछ सोच विचार कर शीघ्र ही दूत को बुलाया और आदेश देते हुए कहा कि जाओ ! अविलम्ब तुम नन्दिग्राम जाओ ! और वहाँ समस्त ग्रामवासियों से कह दो कि महाराज श्री का आदेश है - आप लोग अपने नगर की बावड़ी लेकर शीघ्र ही राजमहल में उपस्थित हों अन्यथा नन्दिग्राम से निकल जाएँ। ''अपनी इच्छानुसार कार्य न होने पर प्रायः सभी को क्रोध बढ़ता ही है किन्तु यदि किसी का बुरा करने पर भी उसका भला हो जाए तब तो फिर कहना ही क्या? और ही अधिक क्रोध भड़क जाता है।''

दूत ने द्रुतगति से नन्दिग्राम की ओर प्रस्थान किया और महाराज श्रेणिक के आदेश को सर्व नगरवासियों को सुना दिया।समाचार सुनते ही नगरवासियों के पैर ढीले पड़ गये, वे सोचने लगे कि हाय ! हाय !! कौन सी आपदा हमारे सिर पर आयी, अब हम क्या करें? बावड़ी कैसे दूसरे गाँव जा सकती है? 'किसी भी बड़े पुरूषों की आज्ञा जब तब पूर्ण नहीं हो जाती है तब

तक प्रथम तो यों ही दुःख होता ही है किन्तु उसके साथ ही आज्ञा का पालन न होने पर दण्डित किये जाने की बात की जाए फिर तो दुःख का कहना ही क्या?' आखिर सभी ब्राह्मण मिलकर अभयकुमार के निकट पहुँचे। उनकी उदासता देखते ही अभयकुमार पहिचान गये कि अवश्य ही इन पर महाराज श्रेणिक की पुनः आज्ञा हुई है। उन्होंने ग्रामवासियों से सारी बात पूछी और कहा कि आप लोग घबड़ायें नहीं, इस प्रश्न का भी समाधान मगध नरेश के पास भेजा जाएगा।

उन्होंने कहा कि आप लोग चिंता न करो, धैर्य रखकर अपनी बुद्धि से काम लो। जिस दिन महाराज श्रेणिक, दिन के अत्याधिक थके हुए हो और रात्रि के समय प्रगाढ़ निद्रा में सो रहे हो तब आप लोग नगर के समस्त बैल, घोड़ा, भैसा आदि एकत्रित कर एवम् उन पर जुआँ रखकर (अर्द्ध रात्रि के समय) राजमार्ग से होते हुए महाराज के शयन स्थान तक ले जायें और कोलाहल करते हुए कहें महाराज ! महाराज !! नन्दिग्राम से हम लोग बावड़ी ले आये बताओ उसे कहाँ रखे, जल्दी बताओ उसे कहाँ रखे इत्यादि अनेक बार द्वारपालों के द्वारा रोके जाने पर भी उनकी न मानते हुए इसी प्रकार करते रहना इसी से इस प्रश्न का समाधान हो जाएगा। नगरवासियों ने अवसर देखकर एक दिन ऐसा ही किया। पशुओं एवं ग्रामीणों की आवाज के कोलाहल ने महाराज श्रेणिक को व्याकुल चित्त कर दिया जिससे उन्होंने अर्द्ध निद्रित अवस्था में

कि ठीक है जाओ ले जाओ जहाँ से लाये हो उसे उधर ही रख आओ। यह शब्द ग्रामीणों के लिए शीतल जल के समान लगा, वे खुशी-खुशी से अपने नगर लौट गये। ''ज्ञान में ऐसी शक्ति होती है जो अच्छे अच्छे बुद्धिमानों को भी घुमा देती है।''

प्रातः काल होते ही महाराज श्रेणिक निद्रादेवी की गोदसे उठे और अपने इष्टप्रार्थनासे निवृत्त जाने पर उनसे द्वारपालोंने रात्रि की समस्त घटना कह सुनाई तथा कहाँ कि आप ने उनसें यह कह दिया था कि जहाँ से लाये हो उसे उधर ही ले जाओ यह बात सुन वे उसे वापिस ले गये। महाराज श्रेणिक को अपनी इस भूल का बड़ा पश्चाताप हुआ।

देखिये ! बुद्धि में कितनी शक्ति होती कि असंभव से भी असंभव प्रश्नों को भी कितनी आसानी से एवं सरलता से हल कर दिया जाता है, प्रश्नकर्ता के कुटिल प्रश्नों के किस प्रकार से कुटिल उत्तरों द्वारा काटा जाता हैं। उसे पराजित तो किया ही जाता हैं किन्तु साथ ही साथ उसे पश्चाताप की ज्वालाओं में भी ध्वस्त कर दिया जाता है। जिससे फिर वह तड़फ उठता है और सदा सदा के लिए सावधान हो जाता है।

अतः हम सभी को चाहिए कि हम जब भी किसीसे कोई भी प्रश्न करें तब सरलता से एवं जिज्ञासा भाव से करें जिससे की हमे फिर पराजय या पश्चाताप की आग में न झुलसना पड़े।

卐

भूषणे द्वे मनुष्यस्य नम्रताप्रिय भाषणे ।
अन्यद्धि भूषणं शिष्टैर्नादृतं सभ्यसंसदि ॥५/१०॥

अर्थ - नम्रता और प्रिय संभाषण बस ये दो ही मनुष्य के आभूषण हैं किन्तु सज्जन पुरूषों की सभा में विद्वानों ने अन्य आभूषणों को कुछ भी स्थान नहीं दिया गया है ।

दो गहने नरजाति के, विनय तथा प्रिय बोल ।
शिष्टों की वरपंक्ति में, अन्यों का क्या मोल ॥

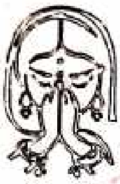

क्षमा और हाथी का वजन

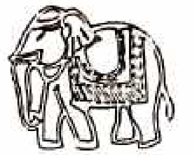

महाराज श्रेणिक ने इस बार दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अब मैं अवश्य ही नन्दिग्रामवासियों को पराजित कर देश के बाहर निकाल दूंगा। इसलिए सोच विचार कर उन्होंने दूत के द्वारा नंदिग्रामवासियों को समाचार भेजा कि आप लोग हाथी को तोलकर, उसके वजन के बराबर की कोई अन्य वस्तु शीघ्र ही राजमहल में भेजो। ऐसी मगध नरेश महाराज श्रेणिक की आज्ञा है अन्यथा देश से बाहर निकाल दिये जाओगे। यद्यपि नंदिग्रामवासी इस बात को अच्छी तरह से समझ गये थे कि महाराज श्रेणिक का हम सब पर तीव्र क्रोध है अवश्य ही हम किसी से कोई बड़ा अपराध बन गया है अतः उन लोगों ने अपने अपराधों की बार-बार क्षमा मांगी और आगे कभी ऐसा अपराध नही करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा भी ली। ''किसी की रोषपूर्ण मुद्रा देख अपने द्वारा कृत अपराधों का स्मरण करना एवं पश्चाताप करते हुए निष्कपट भाव से क्षमा मांग लेना इससे बढ़कर कोई दूसरा गुण नहीं है।'' किन्तु इसका किंचित भी प्रभाव महाराज श्रेणिक पर नहीं पड़ा। ''कषाय जब तीव्र वैर भाव की वेदी को छू लेती है तब अनेक बार मांगी गयी क्षमा भी निस्सार हो जाती है। यद्यपि सामने वाला क्षमा प्रदान करे या न करे किन्तु सत्य एवम् सरलता से क्षमा मांगने वाला तो नियम से पाप फलों से छूट जाता है।''

ग्रामवासी समस्त नर-नारियाँ अभय कुमार के पास गये एवं उन्होंने अपनी सारी व्यथा उन्हें सुना दी तथा कहा कि प्रथम तो हाथी को तोलना ही बड़ा कठिन है और फिर उसके वजन की अन्य वस्तु को राजमहल में भेजना तो और ही अधिक कठिन है। यह कैसे संभव हो सकता है? अवश्य ही अब हम सब को देश से निकलना पड़ेगा। अभय कुमार ने कहा - नहीं ! नहीं !! ऐसा नहीं होगा। महाराज का प्रश्न कोई कठिन नहीं है। आप लोग ध्यान रखें किसी जल से भरे गहरे तालाब में एक बड़ी एवं मजबूत नाव डालो और फिर उस पर हाथी को खड़ा कर दो हाथी के वजन से नाव जल में जितनी डूबे उतने स्थान पर निशान लगा दो। पश्चात हाथी को उससे उतारकर उस नाव में पाषाण के शिला खण्ड (पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े) तब तक भरो जब तक कि उक्त निशान तक नाव डूब न जाये फिर उन टुकड़ों को राजसभा में भेज देना इससे महाराज के प्रश्न का पूर्ण समाधान हो जाएगा। अभय कुमार के मुख से उक्त उपाय सुन सभी बड़े प्रसन्न हुए और वे उनकी बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थान पर लौट आये। 'महान संकट के टल जाने पर किसे प्रसन्नता नहीं होती? और जिसके द्वारा संकट दूर हो जाता है वह व्यक्ति तो उसे अपने इष्ट देव के समान ही लगने लगता है।' उन लोगों ने वैसा ही किया जैसे अभय कुमार ने बताया था। महाराज श्रेणिक ने हाथी के बराबर वजन के पाषाण खण्डों को देखा जिसे देख उन्हें बड़ा आश्चर्य

हुआ।

देखिये ! सरल हृदयी प्राणी अपनी सरलता के कारण भीषण से भीषण परिस्थितियों में भी आसानी से पार हो जाते हैं। उनके पास कुछ भी सहारा न होने पर भी उन्हें अनायास ही बड़े से बड़ा सहयोग मिल जाता है। सरलता में कषायें मंद रहती हैं। मंद कषाय में ही क्षमा मांगने के परिणाम होते है। जिससे प्राणी प्रति समय पुण्यास्त्रव को प्राप्त होता है यह सब ग्रामवासियों के पुण्य का ही प्रताप था कि जिससे उन्हें अभय कुमार जैसा बुद्धिशाली पुरूष का समागम प्राप्त हुआ।

अतः हम सभी को चाहिए कि हम भी क्षमा भाव उवं सरलता को धारण करते हुए नित्यशः पुण्य के भाजन बनें।

उपेक्षा नैव कर्तव्या प्रसादस्य महात्मनाम् ।
प्रणयोऽपि न हातव्यस्तेषां ये दु:ख बान्धवा: ॥१६ / ११ ॥

आ. कुंदकुंदाचार्य

अर्थ - यदि तुम्हारे विचार शुद्ध तथा पवित्र है और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है तो तुम्हारी पाप-वृत्ति का क्षय हो जाएगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी।

खैर की लकड़ी

किंचित भी किया गया तिरस्कार का परिणाम कितना भयंकर होता है जो कि प्रारम्भ में तो कुछ ही नहीं मालूम होता है किन्तु अन्त में पश्चाताप एवं सन्ताप के आंसू बहा देता है नंदिग्रामवासी ब्राह्मणों ने अपने द्वार पर भोजन हेतु आये हुए कुमार श्रेणिक को जिस समय तिरस्कृत कर भगाया था उस समय वे यह नहीं जानते थे कि आखिर में इसका परिणाम क्या होगा? "किसी भी गलती, दोष या पाप करते समय इतना ज्ञान कहाँ रहता है कि इसका परिणाम कल क्या होगा, यह सोच सकें यदि इतना ज्ञान रहा आवे तो कौन उक्त कार्यों में प्रवेश करेगा।"महाराज श्रेणिक उन्हें देश से निकालने हेतु एक से एक जटिल प्रश्न उन पर भेजते जा रहे थे ताकि समाधान न करने पर उन्हें आसानी से राज्य से निकाल दिया जा सके।

किसी एक दिन उन्होंने रोषपूर्ण शब्दों में कहा - क्या अभी भी नंदिग्रामवासी ब्राह्मण नगर से नहीं भागे? मैं देखता हूँ उनकी बुद्धिमानता को। उन्होंने अपने एक दूत को खेर की लकड़ी का एक टुकड़ा देते हुए कहा कि जाओ और नंदिग्रामवासियों से कह दो कि वे इस लकड़ी का अगला हिस्सा बतावें अर्थात इसका ऊपरी भाग कौन सा है। इस प्रश्न का उत्तर अविलम्ब भेजें। राजाज्ञा का पालन न करने पर या विलम्ब करने पर देश से बाहर निकाल दिये जाओगे।

"यदि कोई अन्य प्राणी अन्याय करे तो उसका न्याय राजा करता है किन्तु यदि राजा ही अन्याय करने लग जाए तो उसका न्याय कौन कर सकता है?" फलस्वरूप नंदिग्रामवासी ब्राह्मण राजाज्ञा एवं भीषण परीक्षा को सुन बहुत ही दुःखी थे। उनके पास ऐसा कोई सा भी उपाय नहीं था जिससे कि रूठे हुए राजा को समझाया जा सके या शान्त किया जा सके। वे बड़े परेशान एवं दुःखी थे। "तीव्र अशुभ कर्म के उदय होने पर चारों तरफ से आपत्तियाँ दिखती हैं।" फिर भी उनका कुछ तो पुण्य उदय था ही जिसके कारण उन्हें अनायास ही अभय कुमार का पावन सान्निध्य प्राप्त हुआ।

अतः सभी ब्राह्मण अभय कुमार के पास गये और उन्हें खेर की लकड़ी देते हुए कहा - हे कुमार! आप हम लोगों के अकारण प्राण रक्षक है। अभी तक आपने हम सबकी रक्षा की है। आपके इस उपकार को हम लोग कभी भी नहीं भूलेंगे। महाराज श्रेणिक ने इस लकड़ी का अगला (उपरी) हिस्सा पूछा है - यह दोनो तरह से समान दिखता है अगले हिस्से का कैसा निर्णय किया जाए यह हम लोगों की समझ में नहीं आता अतः आप ही बताइये कि इसका निर्णय कैसे किया जाए? अभय कुमार मुस्कराये पश्चात् उन्होंने उस लकड़ी को जल में डाला। वह लकड़ी जल में तैरने लगी तथा जो हिस्सा आगे की ओर बह रहा था उसे ही अगला हिस्सा समझ उसमें निशान लगाते हुए कहा जाओ महाराजश्री से कह दो कि इस लकड़ी का अगला हिस्सा यह है। सभी ने ऐसा ही किया अर्थात्

राजसभा में जाकर लकड़ी का अगला हिस्सा बतला दिया फिर भी महाराज श्रेणिक का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे अगले उपाय की खोज में निमग्न हो गये।

देखिये ! तिरस्कार का परिणाम कितना कठोर होता है कि जिसके फलस्वरूप एक ही राजाज्ञा को पूर्ण करने में नंदिग्रामवासियों के प्राण सूख जाते थे फिर भी एक से एक कठिन प्रश्नों को महाराज श्रेणिक उन पर छोड़ते जाते है।

अतः बन्धुओं ! ध्यान रखो सदा कोई कैसा भी दयनीय एवं निर्बल क्यों न हो तो भी उसका कभी भी तिरस्कार मत करो। यदि आप उसका सत्कार नहीं कर सकते हैं तो तिरस्कार का भी आपको कोई अधिकार नहीं है। अतः कभी भी किसी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

तिल का तेल (विद्वेषता)

आपसी में हुई विद्वेष भावना को यदि शान्त नहीं किया जाए तो वह धीरे-धीरे स्थायीपने को प्राप्त हो जाती है जिसका कि विकराल रूप वैर ही होता है जो कि एक भव में ही नहीं अपितु अनेक भवों तक अमिट रहता हैं।

महाराज श्रेणिक का भी यही हाल था। उनका नंदिग्रामवासियों के प्रति जो बैर भाव था वह सीमा लांघ चुका था। एक दिन उन्होंने नंदिग्रामवासियों को समाचार भेजा कि वे शीघ्र ही तिल के बराबर ही तेल लेकर राजदरबार में उपस्थित हो। न तिल अधिक होंना चाहिए और न तेल। दोनों बराबर हों, अन्यथा देश से निकाल दियें जाओंगे। समाचार सुनते ही ग्रामवासीजन आपस में वार्ताएँ करने लगे कि यह कैसे संभव है कि तेल तिल के बराबर ही हो? यदि उसकी बराबरी तौलकर की जाए तो तेल का वजन कम और खली का वजन अधिक हो जाएगा तथा फैला करके बराबरी की ज़ाए तो भी संभव नहीं है आखिर में क्या किया जाए। ''तीव्र अशुभ कर्म के उदय होने पर बुद्धि भी काम नहीं करती है।'' वे इस बात से सर्वाधिक दुःखी थे कि यदि महाराज की आज्ञा का पालन नहीं हुआ तो देश से निकलना पड़ेगा तथा उस स्थिति में हम सब को अन्य देशों में भी कोई स्थान नहीं मिलेगा और न कोई इज्जत। अन्त में सोच विचार करते हुए वे अभय कुमार के पास

पहुँचे। ठीक ही है "सज्जन पुरूषों का यही कर्त्तव्य है कि कैसा भी महान संकट क्यों न हो तो भी उसकी पूर्ण जानकारी किसी बुद्धिमान, विश्वासी एवं हितैषी को अवश्य दें और उनसे रक्षा का उपाय पूछे चाहे भले ही समाधान प्राप्त हो सके या न हो सके।"

अभयकुमार ने उनका आदर किया और मिष्ट वाणी में आने का कारण पूछा। ग्रामवासियों ने महाराज श्रेणिक की आज्ञा सुनाई और समाधान का उपाय पूछते हुए कहा कि हे कुमार! अब एकमात्र आप ही हमारे प्राण रक्षक है। आपके द्वारा ही हम सबके संकट दूर हुए हैं और आगे भी दूर हो सकते हैं। हम सब तो बस आपकी शरण में आये हैं अब ही बतायें हम क्या करें? अभय कुमार ने उनकी करूण पुकार सुनी और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि आप लोग मेरे रहते हुए किसी भी प्रकार की चिंता न करें, मैं अवश्य ही तुम सबको संकटों से मुक्त करूँगा। कितने भी कठिन प्रश्न क्यों न महाराज भेजे तो भी मैं उसका समाधान भेजता रहूँगा।

आप लोग ध्यान रखें - जो तिल महाराज श्री ने भेजे हैं उन्हें सर्वप्रथम कांच पर समान रूप से फैला दे तथा उसकी सीमा की चारों तरफ से रेखा खांच दे पश्चात् उन तिलों का तेल निकालकर उसे उक्त कांच मे बनी सीमा रेखा के अन्दर-अन्दर लगा दें ऐसा करने से तिल के बराबर ही तेल हो जायेगा और इससे महाराजश्री भी संतुष्ट हो जाएँगे। नंदिग्रामवासियों ने ऐसा ही किया और उन्होंने महाराज श्रेणिक को तिल के बराबर ही तेल दिखा दिया। यह देख

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कुछ समय तक अवाक रह गये फिर भी राजसभा में उन्होंने ब्राह्मणों की बनावटी प्रशंसा की किन्तु अनुकूल समाधान पाकर वे अन्दर ही अन्दर जल भुन गये, उन्हें ग्रामवासियों का प्रत्येक समाधान जले में नमक सदृश लगता था।

देखिये !, विद्वेषता का परिणााम जब किसी से अत्याधिक विद्वेष भाव बढ़ जाता है तब उसकी सत्य बात भी तीर जैसी चुभने लगती है। महाराज श्रेणिक विद्वेषता के कारण बिना घाव और बिना आघात से ही मात्र उत्तर पाकर तड़फ उठते थे। विद्वेषता का यह प्रत्यक्ष उदाहरण है कि जिससे विद्वेष किया जा रहा है उसका तो जो होगा सो तो होगा किन्तु विद्वेष करने वाला प्रथम ही दुःख एवं संक्लेशता को प्राप्त हो अहर्निश कर्म के जटिल बंधन बांधकर उभय लोक में तीव्रतम दुःख को प्राप्त करेगा।

इसलिए हम सब को चाहिए कि कभी भी किसी के प्रति किंचित भी विद्वेष न रखें। क्योंकि यदि किसी ने हमारा कुछ भी बुरा किया है तो उसे अवश्य ही स्वतः उसका फल भोगना पड़ेगा, उसे कोई टाल नहीं सकता यह शाश्वत कर्म सिद्धांत है तो फिर उसके प्रति बुरा विचार कर हम क्यों व्यर्थ में कर्म का बंधन करूँ इत्यादि। हाँ, इतना जरूर है कि विपरीतता की तीव्रता में माध्यस्थ भाव का आश्रय लेना चाहिए न कि विद्वेषता का।

सत्य स्नेह (दूध)

हार्दिक स्नेह यह एक ऐसा वशीकरण मंत्र है जिसके कारण प्रायः हर मानव बस में हो जाते हैं और वे हमारे अनन्य रथक बन जाते हैं। फिर वे स्नेह के सामने अपने तन, मन, धन, जीवन आदि सब कुछ अर्पण कर देते हैं। यहाँ तक ही नहीं स्नेहवान की बड़ी-बड़ी आपदाएँ भी अपने सिर पर लेते है। नंदिग्रामवासियों का अभय कुमार के प्रति एक मात्र सच्चा हार्दिक स्नेह ही था जिसके कारण अभय कुमार वहाँ बहुत दिन तक रूके रहे और अपनी बुद्धि चातुर्यता से उनकी रक्षा करते रहें।

कुछ दिनों के बाद राजगृह से नंदिग्राम में एक दूत आया। उसने नगरवासियों को सूचित किया कि नंदिग्राम के निवासियों ! ध्यान देकर सुनो, राजगृह के वीर पराक्रमी नरेश महाराज श्रेणिक का आदेश है कि आप लोग अविलम्ब ऐसा दूध तैयार करें और उसे लेकर राजसभा में उपस्थित हो जो कि न किसी चौपद गाय, भैंस आदि चार पैर वाले जानवरों का हो और न ही द्विपद दो पैर वाले स्त्री आदि का हो, किन्तु पीने योग्य मिष्ट एवं शक्तिवर्द्धक दूध हो। आज्ञा पूर्ण न करने पर नगर से निकाल दिये जाओगे। दूत के मुख से हृदय भेदी बात सुनकर सभी ब्राह्मण घबड़ाये किन्तु अभय कुमार का स्मरण करते ही प्रसन्न हो गये। उनका सारा भय दूर हो गया, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि अभयकुमार अवश्य ही इस

प्रश्न का भी कोई समाधान निकाल देंगे। वे सभी शीघ्र ही अभय कुमार के पास पहुँचे। अभय कुमार ने अपने द्वार पर आये हुए आगंतुकों का यथायोग्य सम्मान किया और उनके आने की प्रसन्नता व्यक्त की। "सज्जनों की परीक्षा बिना कहे और बिना देखे भी उसके गुणों से हो जाती है। आगंतुकों के प्रति दो शब्द मिष्ट बोलने से तथा उनका यथायोग्य आदर करने में किसी का कुछ जाता नहीं है और न कुछ खर्च ही होता है तो भी हम उससे अधिकांशतः वंचित रह जाते है।" अन्त में अभय कुमार ने ग्रामवासियों से आने का कारण पूछा। ग्रामवासियों ने भी अपनी बात रखी और चिंता व्यक्त करते हुए समाधान मांगा। अभयकुमार ने कहा कि इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं है। विषय बहुत ही सरल है। आप लोग धान्य को रात्रि के समय जल में भिगो देना तथा प्रातः उन्हें उबालकर खूब महीन पीसकर कपड़े से छान लेना। पश्चात छने भाग को घड़े में भरकर राज दरबार में भेज देना। ऐसा करने से महाराज के प्रश्न का समाधान हो जाएगा। सभी ग्रामवासी बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्नता के साथ अपने-अपने गृहों में पहुंचे तथा जैसी विधि अभय कुमार ने बताई थी उसी के अनुसार उन्होंने दूध बनाकर राज दरबार में भेजा किन्तु सही उत्तर पाकर महाराज श्रेणिक चुप हो गये।

देखिये ! सत्य स्नेह कितना महान होता है। वह प्राणियों को बड़ी से बड़ी आपदाओं से रक्षा कर देता है। स्नेह प्रायः अनेक

प्राणियों में मिल सकता है किन्तु सभी का स्नेह सच्चा स्नेह नहीं कहा जा सकता है। सच्चा स्नेह वही है जो अपने हितु को आनेवाली आपत्ति से बचाकर सुरक्षित कर ले, ऐसा करने में भले ही स्वयं को कष्ट का अनुभव करना पड़े। किन्तु उसे सही मार्गदर्शन देवे।

अत: हम सभी को इसी प्रकार का ही सत्य, स्नेह धारण करना चाहिए। वह स्नेह सदा धर्म की ओर ले जानें वाला हो, अवनति से बचा कर सदाचारवर्द्धक हो, तभी जीवन में कल्याणकारी सिद्ध होगा।

पर कार्यमपि प्रीत्या, स्वकार्यमिव यो गृहीं।
कुरूते तस्य कार्येषु, सिद्धि भाग्यवत: सदा ॥१०/१२॥

श्री. कुंदकुंदाचार्य

अर्थ - उस सद्‌व्यवहारी पुरूष को देखो कि जो दूसरे के कामों को भी अपने विशेष कार्यों के समान देखता भालता है। उसके कार्य अवश्य ही उन्नति को प्राप्त करेंगें।

एक मुर्गे की लड़ाई

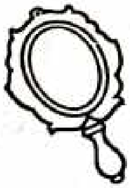

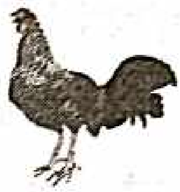

प्राणी मात्र में मैत्री भाव का होना सम्यग्दर्शन का एक महान गुण है और सच्चे मित्र का विशेष गुण है। मित्रता का अर्थ खाना और खेलना नहीं है अपितु सच्चे धर्म की ओर बढ़ना और एक दूसरे को उस ओर बढ़ने के लिए सहायक होना है। वही सच्ची मित्रता है कि जिसमें एक दूसरे को सत्यमार्ग की ओर लगाया जाये और कदाचित किसी के उपर कोई संकट उपस्थित हो जाये तो उसे दूर करने का भरसक प्रयास किया जाये। सत्य मित्र की परीक्षा संकटों में ही होती है। अभयकुमार के अंदर भी प्रगाढ़ मित्रता थी कि उन्होंने अपने ऊपर आने वाली विपदाओं की कुछ परवाह न कर अपने शरणार्थी मित्रों की भरपूर रक्षा की और उन्होंने अपना अमूल्य समय उनकी रक्षा में लगाया।

किसी एक दिन नंदिग्रामवासी के सभी ब्राह्मण मिलकर पुनः अभयकुमार के पास गये और अभयकुमार से कहने लगे हे दीनदयाल! हे दीनानाथ!! हमारे संकटों का निवारिये, अभयकुमार ने उन्हें अपने गले लगाते हुए पूँछा कहो तुम लोगों पर क्या संकट आया बताओ, किन्तु सभी ग्रामवासी निःशब्द हो गये उनके मुख से राजाज्ञा का एक शब्द नहीं निकल रहा था वे चुप थे। तब अभयकुमार ने कहा आप सब हमारे प्रिय मित्र हो 'मित्र, मित्र को

अपनी हर बात सुनाता है चाहे वह अच्छी हो या बुरी यदि वह अपने हृदय की सत्य बात नहीं सुनाता है तो समझना चाहिए कि अभी उसको अपने मित्र की मित्रता में कुछ संदेह है संशय है।' बताओं क्या तुम लोगों को मेरे प्रति कुछ संदेह है नहीं है तो कहो क्या राजाज्ञा है? नंदिग्रामवासियों ने कुमार के वचन सुनकर कहना प्रारंभ किया कि हे कृपालुकुमार ! आज तक तो राजाज्ञाऐं थीं वे तो फिर भी सहज थी किन्तु आज राजाज्ञाऐं हुईं है कि 'एक मुर्गे की लड़ाई दिखाओ' इसकी पूर्ति में मुझे संदेह है क्योंकि एक मुर्गे की लड़ाई न तो किसी ने देखी है और न वह किसी भी प्रकार से संभव है। क्योंकि लड़ाई के लिए कम से कम दो मुर्गे होना चाहिए तब तो लड़ाई संभव है अन्यथा एक मुर्गा किससे लड़ेगा इत्यादि ग्रामवासियों की बात सुनकर अभयकुमार ने कहा - ''संसार में ऐसा कौन सा कार्य है जो पुरूषार्थी एवं विवेकी मनुष्य के लिए असंभव हो।''आप लोग किंचित् भी चिंता न करें, एक मुर्गे की भी लड़ाई होंगी कल आप लोग एक मुर्गा तथा मजबूत दर्पण लेकर राजमहल में पहुंचे एवं महाराज से कहें कि स्वामिन् ! एक मुर्गे की लड़ाई दिखाने के लिये नंदिग्रामवासी तैयार हैं। पश्चात् राजाज्ञा लेकर दर्पण के समक्ष मुर्गे को खड़ा कर देना मुर्गा अपने ही प्रतिबिम्ब को दूसरा मुर्गा समझ उससे लड़ेगा ऐसा करने से राजाज्ञा का समाधान हो जायेगा। नंदिग्रामवासियों के सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए तथा उन्होंने वैसा ही किया जैसा कि अभयकुमार ने कहा था

ऐसा करने से महाराज संतुष्ट हो गये।

देखिये सच्चे मित्र कितने महत्त्वशाली होते है, वे अपने मित्र की प्राण रक्षा किस प्रकार करते हैं मित्र सच्चा वहीं है जो अपने मित्र की हर परिस्थिती को सम्हालने योग्य कार्य की प्रशंसा कर उसे उत्साहित करें एवं बुरे कार्यों को छुड़ाने में एवं सत्यधर्म की ओर प्रोत्साहित करने हेतु हरदम तैयार रहें, संकट विपदाओं में धैर्य दिलायें तथा उनसे बचने का उपाय बतायें।

अत: हम सभी को भी चाहिये कि हम सभी अभयकुमार के समान उपरोक्त सभी गुणों को धारण कर सच्चे मित्र बनकर सत्य मित्रता का परिचय दे अपने सभी मित्रों को बुरे कार्यों से हटाकर अच्छे कार्यों में लगायें, अच्छी वार्तायें करें, एवं उनके प्रति हित रूप पावन विचार बनायें।

अधिक गुणी की मित्रता, जिसे मिली कर भक्ति।
उसने एक अपूर्व ही, पाली अद्भुत शक्ति ॥४/४५॥

अशुभ मार्ग से दूर कर, कर दे कर्म पवित्र।
दुःख समय भी साथ जो, वही मित्र सन्मित्र ॥७७/९॥

झिड़क सके जो चूक पर, जाने शुभ आचार।
ऐसे नर की मित्रता, खोजो सर्व प्रकार ॥५/८०॥

बालू की रस्सी

महाराज श्रेणिक को कोई भी नहीं समझता था कि वे इतने कठोर होंगे, नंदिग्रामवासियों के प्रति तो उनका हृदय पाषाण वत् कठोर हो गया था। "मिथ्यात्व की अनुचरि अनंतानुबंधी कषाय होती है जो कि बिना मिथ्यात्व के छूटे नहीं छूटती है उसे ही शास्त्रों में शैलवत (पाषाणवत्) कहा है।" अभी तक महाराज श्रेणिक के सम्यग्दर्शन नहीं हुआ था इसलिए मिथ्यात्व के जोर से अनंतानुबंधी का भी जोर था। जिसके ही कारण अनेक बार गणमान्य एवं धर्मात्मा जनों द्वारा समझाये जाने पर भी तथा विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर भी नंदिग्रामवासियों को समाचार भिजवाया कि वे "बालू की रस्सी" बनाकर सभा में लायें। अन्यथा ग्राम से निकाल दिये जायेगें। दूत नंदिग्राम जा रहा था रास्ते में वह मन ही मन सोचने लगा कि देखो कषाय का तीव्र परिणाम, नंदिग्रामवासियों ने कितनी बार क्षमा मांगी किन्तु उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तथा कितने ही धर्मात्मा, सज्जन एवं गणमान्यों ने उन्हें समझाया किंतु उसका भी कुछ प्रभाव नहीं हुआ। ठीक ही है "कषाय की तीव्रता में विवेक लुप्त हो जाता है ऐसी स्थिति में स्वयं का विवेक तो कुछ काम नहीं करता किन्तु कोई यदि सत्य रूप से समझाता भी है तो भी उसे कुछ समझ में नहीं आता है अपितु विपरीत ही भासने लगता है।"दूत ने नंदिग्राम पहुंच कर ग्रामवासियों के लिये

राजाज्ञा की घोषणा कर दी। घोषणा सुनते ही ग्रामवासी घबड़ाये और आपस में कहने लगे देखो ! अन्याय ! महाअन्याय ! घोर अन्याय कर रहे है महाराज हम लोगों पर - चलो ऐसे राज्य में नहीं रहना है और ऐसे राजा की भी शरण में नहीं रहेंगे हम लोग, इत्यादि वार्ता सुन कुछ गणमान्य जन उन्हें समझाने लगे - नहीं ! नहीं !! हम लोगों को ऐसा नही करना चाहिये हमने जिसका नमक खाया है उसे हम अन्तिम दम तक नहीं छोड़ेंगें अन्यथा हम जिस राजा की भी शरण में जायेंगे वह यही सोचेगा कि जो प्रजा अपने राजा के वश में नही रही तथा उसे कलंक का टीका करके निकली है, वह हमारी कैसे हो सकेगी वह हमें भी कलंक का टीका लगायेगी, इस प्रकार से जिसकी भी शरण में हम जायेंगे वे सभी हमारे ऊपर अविश्वास करेंगे, अतंतोगत्वा ''न घर के न घाट के'' सदृश हमारी अवस्था होगी। दूसरी बात जीवन के अंतिम क्षण तक हम अपनी मातृभूमि को नहीं छोड़ेंगे। अभयकुमार के प्रसाद से हर समस्याओं को हम हल करेगें। इत्यादि वार्ता करते हुए वे अभयकुमार के पास पहुंचे। और उनसे कहने लगे - हे प्राणरक्षक ! आज नहीं मालूम महाराज श्री को क्या सूझी उन्होंने हम लोगों से ''बालू की रस्सी'' मंगाई है। क्या किसी ने भी बालू की रस्सी सुनी या देखी है? बालू का तो रस्सी जैसा आकार प्रकार तक नहीं बन सकता है तो हम उसकी रस्सी बनाकर तथा दिखाकर कैसे महाराज को संतुष्ट कर सकते है। आप ही कोई उपाय, बताईये, आप ही हमारे प्राणरक्षक

है।अभयकुमार ने कहा आप लोग चिंता न करें कल राजसभा में पहुँचकर महाराज से विनयपूर्वक कहो - हे राजन ! आप बड़े ही प्रतापी एवं नीति कुशल है आपका भंडार अक्षय है उसमें किसी भी वस्तुओं की किंचित भी कमी नहीं है आप कृपाकर बालू की रस्सी का कुछ नमूना दे दें तो हम लोग उसी प्रकार की रस्सी बनाकर आपकी आज्ञा को पूर्ण करेंगें इत्यादि। ग्रामवासियों ने ऐसा ही किया किंतु महाराज श्रेणिक उनकी बात सुनकर मौन हो गये उन्होंने उनसे एक शब्द नहीं कहा। ''ठीक है असत्य में कितना और कहाँ तक बल हो सकता है।''

देखिये ! कषाय का परिणाम कि जिसके कारण सारा विवेक भी लुप्त हो जाता है तथा दूसरों के द्वारा बार-बार समझाये जाने पर भी कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

अतः हम सभी को चाहिए कि प्रथम तो किसी के साथ भी कषाय भाव करें ही नहीं, और यदि हो भी जाये तो विश्वस्त विवेकी धर्मात्मा जन प्राणी द्वारा समझाये जाने पर उसे छोड़ दें।

कषाय वशगो जीवो, कर्म वध्नाति दारूणम् ।

तेजसौ क्लेशमाप्नोति, भव कोटिषु भीषणम् ॥३२॥

श्री कुलभद्राचार्य

अर्थ - कषायों से वशीभूत जीव दारूण कर्मों का बंध कर लेते है और तदनुसार करोड़ों में अत्यंत भीषण क्लेश को प्राप्त करता है। (इसलिए कषाय से सदा दूर रहना चाहिए।)

अनीश्वरी सुख दुख (कद्दू)

कर्मोदय का परिपाक कितना भयंकर होता है इसे वह ही जानता है जिसने उससे सामना किया है। प्राणी प्रायः हंसते हंसते कर्म बांध लेते हैं, उस समय यह नहीं सोचते हैं कि आखिर में कल इसका परिणाम क्या होगा। उस समय ज्ञान चेतना प्रायः सुस सदृश हो जाती है, यदि उसे कोई समझाये तो भी उसे उस पर विश्वास नहीं जमता और न ही वे बातें समझ में आती हैं। अपितु कड़वी विपरीत ही लगती हैं। किन्तु कर्म के उदय में फिर पश्चाताप का ही संताप होता है उस समय फिर वह रोता है और कहता है कि हाय ! हाय !! मैं ये क्या कर बैठा, मेरी उसे समय बुद्धि कहाँ गयी थी? अन्य परिजन वा गुरूजनों द्वारा समझाये जाने पर भी प्रतिबुद्ध क्यों नहीं हुआ अथवा कभी-कभी यहाँ तक भी कहने लगता है कि मैंने तो कुछ नहीं किया था तो ईश्वर ने मुझ पर क्या वज्र प्रहार कर दिया। इत्यादि। यही अवस्था नंदिग्रामवासियों की थी - वे उस समय कह रहे थे कि हाय ! हाय !! हम लोगों ने श्रेणिक का क्यों अनादर किया? गर्व के लिए धिक्कार हो जिसके कारण हम ऐसा कृत्य कर बैठे। उनका हृदय बोल रहा था - "कि हम नहीं जानते थे कि अभ्यागतों के तिरस्कार से इतना बड़ा फल भोगना पड़ेगा - अब मैं ऐसा नहीं करूँगा" ..... इत्यादि। वे अखण्ड रूप से दुखी थे प्रथम तो राजा की आज्ञा ही बड़ी कठिनाई से वे पूर्ण करपाते थे

और फिर दूसरी आज्ञा की चिन्ता उनके मन सामने उपस्थित होती थी। किसी एक दिन वे बैठे बैठे चर्चा कर रहे थे कि अब पता नहीं महाराज की हम लोगों पर क्या आज्ञा होगी उसकी पूर्ति हम लोग कर सकेंगे या नहीं, नहीं कर पाये तो हम लोगों की क्या दशा होगी, हम लोग कहाँ जायेंगे.....क्या करेंगे.....इत्यादि।

इतने में उनकी दृष्टि राजगृह नगर से आते हुए एक घुड़सवार पर पड़ी, उसे देखते ही उनके हृदय पर एक गहन चोट लगी (धक्का लगा) कि देखो ! वो देखो ! वो दूत आ ही गया ! पता नही अब क्या समाचार लाया है.....घोड़ा तेजी से आकर उनके निकट आ थमा दूत ने राजाज्ञा की घोषणा करना प्रारंभ कर दी, 'समस्त नगर वासियों को सूचित किया जाता है कि - मगधाधिपति - राजगृह नरेश - महाराजाधिराज - श्री श्रेणिक महाराज की आज्ञा है कि आप लोग मिट्टी के घड़े में एक पूर्ण (साबुत), कासीफल (कद्दू, कूमड़ा) लेकर राजसभा में उपस्थित हों आज्ञा पूर्ण न होने पर देश से बाहर निकल दिये जाओंगे।' आज्ञा सुनते ही सारे नगर में हलचल मच गयी कोई अन्य जनों से आज्ञा के विषय में पूछ रहा था, कोई बता रहा था, कोई सोच में निमग्न था, कोई आज्ञा पूर्ति के उपाय में प्रयत्नशील था, अंत में सभी प्रकार से निरूपाय हो वे सब अभयकुमार के पास पहुंचे और उनसे अपनी दुःख भरी कथा कह सुनाई। अभयकुमार उनकी मुद्रा एवं वार्ता सुनकर ताड़ गये कि ये लोग वास्तव में बहुत दुःखी है अशुभ कर्मोदय से तीव्र सताये हुए

है। अवश्य ही इनका उपकार करना चाहिए।

बार-बार सभी लोग भगवान को ही दोष दे रहे थे, वे कह रहे थे कि यह सब भगवान का ही कोप है जिससे हमारी ये दुर्दशा हो रही है, यदि वे नाराज नहीं होते तो राजा की क्या ताकत थी कि जो हम लोगों पर इतना अत्याचार करते भगवान भी बड़ा पाषाण हृदयी है उसे जरा भी हम लोगों पर दया नहीं आती। "अज्ञानता के कारण प्राणी स्वयं पाप कार्य करके कर्मों को बांधता है और उनके उदय में भगवान को दोष देता है कि भगवान ने हमको ऐसा किया।" वे सभी निरूपाय हो अभयकुमार के पास पहुंचे और उनसे प्रार्थना करने लगे हे कुमार ! अब तुम ही हम लोगों के एक मात्र जीवन का आधार हो, तुम ही हमारे प्राण रक्षक हो, तुमने ही अभी तक हम सब की रक्षा की है अब आप ही बतायें कि महाराज का कोप कैसे शांत हो सकता है हम लोग क्या उपाय करें भगवान हम लोगों पर क्यों दया नहीं कर रहा है इत्यादि। अभयकुमार ने उनसे राजाज्ञा को पूछा और कहा कि आप लोग चिंता मत करो धैर्य का परिणाम बड़ा मीठा होता है। आप लोग एक काम करो एक अच्छा मजबूत घड़े को कासीफल की बेल के निकट ले जाईये और वहाँ फूल रहे किसी छोटे कासीफल को घड़े में रख घड़ा वही रहने दें, कुछ दिनों में जब कासीफल बड़ा हो जाएगा तब उसे बेल से तोड़कर, घड़े सहित राजा को भेंट कर देना इससे उनकी आज्ञा पूर्ण हो जाएगी। ग्रामवासियों ने वैसा ही किया। यह देख महाराज

श्रेणिक ''किं कर्तव्य विमूढ़'' हो गये।

देखिये अज्ञानी प्राणी की अज्ञानता को कि वह गलती स्वयं करता है, पाप स्वयं करता है और दोष भगवान पर थोप देते है कि भगवान ने ऐसा किया। कितना स्वार्थी प्राणी है कि अपने दोषों की छाप निर्दोष परमात्मा में लगाना चाहता है इससे क्या वह पाप फल से बच सकता है? नहीं नहीं कभी नहीं बचेगा अपितु और अधिक कर्म बंध को प्राप्त होगा। क्योंकि उसने पहली गलती तो यह कि स्वयं पाप (कर्म बंध) किया और उस पर भी दूसरी गलती यह और कर ली की अपने दोष ईश्वर पर जड़ दिये।

अतः बंधुओं ! ध्यान रखो पहले कोई कार्य मत करो कि जिससे कर्मबंध हो सके और यदि हो भी जाए तो उसे कभी भी ईश्वर के ऊपर मत छोड़ो।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा
फलं त्वदीयं लभते शुभाशुभं।
परेड़ा दतं यदि लभ्यते स्फुटं
स्वयं कृतं कर्म निरर्थक तदा ॥३०॥

आ. अमितगति

अर्थ - हे जीव ! शुभ अथवा अशुभ कर्म को जो तू स्वयं करता है उसके (सुख अथवा दुःख रूप) फल को कालांतर में तू ही प्राप्त करेगा। दूसरे के द्वारा दिये हुए सुख दुःख तू प्राप्त करता है यदि ऐसी तेरी मान्यता है तो किये गये पूर्व के समस्त कर्म निरर्थक ही सिद्ध हो जायेंगे।

ठंडे गरम जामुन (लोभ)

किसी एक दिन महाराज श्रेणिक अपने राजमहल में बैठे सोच रहे थे, कि क्या बात है ! इतने दिन हो गये मैं अभी तक नंदिग्रामवासियों को पराजित नहीं कर पाया - क्या वास्तव में वहाँ के ब्राह्मण इतने बुद्धिमान हैं या उनके पास कोई अन्य बुद्धिमान मनुष्य है? हाँ, अवश्य ही कोई मनुष्य इनके पास होना चाहिए क्योंकि मैं उन लोगों से तो अच्छी तरह से परिचित हूँ वे तो निपट अज्ञानी है वे किसी भी हालत में हमारे प्रश्नों के हल नहीं कर सकते थे यह तो किसी असाधारण प्रतिभा सम्पन्न अन्य व्यक्ति ने ही उत्तर दिये हैं। पता नहीं यह पांडित्य इन्द्रदेव का है या चंद्र देव का या सूर्य का है या यक्ष का, अवश्य ही इसका पता लगाना चाहिए - ''जब कोई सामान्य व्यक्ति में असामान्यता (असाधारणता) के बारे में सुना या देखा जाये तो उसके विषय में अवश्य ही सभी को शंका होने लगती है जिसका समाधान फिर एक मात्र परीक्षा से ही होता है।''

महाराज श्रेणिक ने कुछ शुरवीर योद्धाओं को बुलाया तथा उनसे कहा कि आप लोग नंदिग्राम जाओ और वहाँ सर्वाधिक बुद्धिशाली व्यक्ति की खोज करो। राजाज्ञा पाकर योद्धाओं ने नंदीग्राम की ओर प्रस्थान किया, रास्ते में एक वन में ठहर गये। नंदिग्राम के बालक क्रीड़ार्थ प्रायः उसी वन में जाया करते थे। नित्य

की तरह बालक वहाँ गये। देवयोग से उस दिन अभयकुमार भी उस दिन उनके साथ गये थे। वे सब एक जामुन वृक्ष पर खेल रहे थे और उसके पके हुए जामुन के वृक्ष को देखा - "फिर क्या था उनके मुँह में पानी आ गया। लोलुपता की यह प्रथम परीक्षा है कि जिसमें इष्ट पदार्थ का नाम लेने या उसे देखने पर अथवा स्मरण करने मात्र से ही मुख पानी से भर जाता है।" भूखे तो वे थे ही अतः जामुन की इच्छा से वे वृक्ष की ओर बंढ़े।

अभयकुमार ने जब राज सेवकों को अपनी ओर आता देखा तो उन्होंने अपने साथी बालकों से कहा कि देखो राजसेवक अपनी ओर आ रहे हैं। तुम लोगों में से कोई उनसे बात नहीं करेंगे, जो कुछ भी जवाब सवाल होगा उसे मैं ही करूँगा। इतने में योद्धा वहाँ आ ही गये और उन्होंने जामुन गिराने की प्रार्थना की। "लोलुपता की द्वितीय श्रेणी में जब व्यक्ति प्रवेश करता है तब मात्र मुख में पानी ही नहीं आता अपितु इष्ट पदार्थ की प्राप्ति में पूर्ण प्रयत्न भी करने लग जाता है।" योद्धाओं की प्रार्थना सुनकर अभयकुमार ने प्रमोद भाव से उनसे पूछा - आप लोग गर्म-गर्म जामुन खाओगे या शीतल-शीतल? अनोखी बात सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन ही मन विचार करने लगे कि हम लोग यह क्या सुन रहे हैं.....? गरम-गरम जामुन कभी किसी ने देखे हैं या सुने हैं? यह कभी संभव भी है क्या? यह बात तो हम आज ही सुन रहे हैं.....इत्यादि।

अंत में उन्होंने गरम-गरम जामुन खाने की इच्छा प्रगट की। अभय कुमार ने पके हुए कुछ जामुन को तोड़े और रेत पर फेंक दिये योद्धा बड़े प्रसन्न हुए वे जामुन की रेत फूँक-फूँक कर खाने लगे। "यह लोलुपता की तृतीय अवस्था है जब प्राणी किसी पदार्थ में अत्यंत लोलुपी हो जाता है तब वह योग्या-योग्य के विचार से शून्य हो उसके सेवन मे संलग्न हो जाता है।" अभयकुमार उनकी उक्त अवस्था देख उनकी हँसी उड़ाते हुए कहने लगे कि जामुन बहुत गरम है फूँक-फूँक कर खाना कहीं आप लोगों की दाढ़ी मूँछ जल न जाये इस बात को सुन वे बड़े लज्जित हुए। तथा वे विचार करने लगे कि चतुर पुरूष यही है और यह अवश्य ही कोई क्षत्रिय कुमार है ऐसा निर्णय कर वे अपने राजगृह नगर लौट गये और महाराज श्रेणिक को सारा वृत्तांत कह सुनाया।

देखिये ! लोलुपता का परिणाम, विषय लोलुपता ही प्राणी को संसार में सबसे अधिक तिरस्कार एवं उपहास का पात्र बना देती है। जिससे वह बेइज्जती पूर्ण जीवन प्राप्त कर कहीं भी अपना सिर ऊँचा नहीं उठा पाता है।

अतः हम सभी को ऐसी लोलुपता से सदा बचते रहना चाहिए यही उपहास एवं तिरस्कार से बचने का प्रथम उपाय है।

शीतो रविर्भवति शीत रूचि: प्रतापी,
स्तब्धं नभो जलनिधि: सरिदम्बुतुप्त: ।
स्थायी मरूद्विदहनो दहनोपि जातु,
लोभानलस्तु न कदाचिद दाहक: स्यात् ॥१/४॥

सुभाषित रत्न सदोह

अर्थ - सूर्य कदाचित् स्तब्ध हो सकता है, चंद्रमा कदाचित् तीक्ष्ण हो सकता है, आकाश कदाचित् स्तब्ध हो सकता है (सीमित या स्थानदान क्रिया से शून्य हो सकता है) समुद्र कदाचित् स्थिर हो सकता है, तथा अग्नि भी कदाचित् दाह क्रिया से रहित हो सकती है, परंतु लोभरूपी अग्नि कभी भी दाह क्रिया से रहित नहीं हो सकती।

अग्नि निर्धन होकर नहीं, याचे पर से द्रव्य ।
निज गौरव से धन्य वह, भू भी उसे अद्रव्य ॥

जिसे घृणा है पाप से वह नर करे न लोभ ।
लगे न वह दुष्कर्म में बड़े न जिससे क्षोभ ॥

एक शब्द से याचना है निंदार्थ समर्थ ।
मांगो चाहे नीर भी गौ के ही तुम अर्थ ॥

कुशल बुद्धि - अभयकुमार

अभयकुमार के प्रभावक वृत्तान्त को सुन महाराज श्रेणिक की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। उन्होंने शीघ्र ही कुमार को लाने कि लिए कुशल दूत भेजे साथ ही उनके द्वारा समाचार भेजा कि आप लोग शीघ्र ही नंदिग्राम जाओ और वहाँ अभयकुमार से कहो कि आपके पूज्य पिता ने आपको बुलाया है। साथ ही उनसे यह भी कहना कि वे न तो मार्ग से आवे और उन्मार्ग से, न दिन में आवें और न रात्रि में, न भूखे आवें न पेट भरके, न किसी सवारी से आवें और न पैदल, किन्तु शीघ्र ही राजगृह नगर में आवे। ''वीर पुत्र की वीरता एवं बुद्धिमत्ता की परीक्षा लिये बिना राजा उसे शीघ्र ही ग्रहण नहीं करते। परीक्षा से सत्य गुणों की महिमा सभी में व्याप्त हो जाती है जिससे वह परीक्षार्थी सभी में श्रद्धाभाजन बन जाता है और अपने आपको गौरवान्वित समझने लग जाता है।''

कुशल दूत अविलम्ब नंदिग्राम पहुंच गये। वहाँ पर उन्होंने अभयकुमार का यथायोग्य आदर सत्कार किया पश्चात् महाराज श्री की आज्ञा को कहा। अभयकुमार ने पितृ आज्ञा को शिरोधार्य किया। ''सच्चे पुत्र का सबसे बड़ा यही कर्तव्य है कि वह अपने पिता की सम्यक् आज्ञा को स्वीकार कर अच्छी तरह से उसे पाले (पूर्ण करे)।'' कुमार को राजगृह नगर की ओर जाने के लिए तैयार देख समस्त नगरवासी आबाल वृद्ध जन शीघ्र ही एकत्रित हो गये।

''सच्चा स्नेह बिना बुलाये जाने पर भी अपने स्नेही (हितैषी) के समक्ष उपस्थित कर देता हैं।'' सब लोग आपस में चर्चा कर रहे थे कि अभी तक तो हम लोगों की रक्षा हुई है यह सब कुमार के पुण्य प्रभाव से हुई है, अगर कुमार नहीं होते तो हम लोगों की रक्षा हुई है यह सब कुमार के ही पुण्य प्रभाव से हुई है, अगर कुमार नहीं होते तो हम लोगों का यहाँ पर रहना कभी भी संभव नहीं था। अब क्या करे। महाराज ने इन्हें ही बुलाया है अब हम लोगों का क्या होगा, कौन हमारा आधार होगा.....इत्यादि वार्ता करते हुए सभी जन अभयकुमार को रोकने का अथक प्रयास कर रहे थे। कोई प्रार्थना कर रहा था। कोई रो रहा था, कोई चिंतामग्न था, कोई चर्चा मग्न था। अंत में अभयकुमार ने सभी को सांत्वना दिलाते हुए संबोधा और कहा कि आप लोग किंचित भी चिंता मत करो, धैर्य धारण करो, हम सदा आप लोगों के साथ रहेंगे। ध्यान रखेंगे, किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं आने देंगे आप लोग खेद मत करो। मुझे कर्तव्य को करने दो, ''क्योंकि कर्तव्य ही प्राणी का जीवन है, कर्तव्य हीन प्राणी मृत तुल्य है।'' इत्यादि प्रकार से सभी को संबोधकर उन्होंने एक रथ तैयार करवाया, उसमें एक सींका बंधवाया, चने का अल्प भोजन कर रथ को आगे बढ़ाया रथ का एक चाक मार्ग पर चल रहा था दूसरा चाक मार्ग से बाहर। सांझ के समय वे राजसभा में उपस्थित हुए। उनके साथ नंदिग्रामवासी अनेक ब्राह्मण भी गये थे। राजपुत्र अभयकुमार को

देखने सारा नगर उमड़ पड़ा सभी जगह उनकी बुद्धिमता की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

उन्होंने पिताश्री को विनयपूर्वक नमस्कार किया और उनके चरण छुये।

महाराज श्रेणिक ने भी अभयकुमार को बड़े हर्ष एवं स्नेह के साथ गले लगाया एवं कुशल वार्ता पूछी। वे उनकी बुद्धिमत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। अंत में अभयकुमार ने महाराज श्रेणिक द्वारा समस्त नंदिग्रामवासियों को क्षमा कराया।

देखिये ! बुद्धि की चातुर्यता, बुद्धिमान प्राणी सदा अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के प्रभाव से स्वयं भी हर परिस्थिति में सफल एवं प्रसन्न रहता है तथा शरण में आये हुए प्राणियों को भी प्रसन्न एवं संतुष्ट कर देता है।

अतः हम सभी को भी ऐसी बुद्धि का सृजन करना चाहिए जिससे प्रसन्नता और संतोष की अभिवृद्धि हो।

आकस्मिक विपचके बुद्धिः सन्नाहसन्निभा।
अजय्य: प्रतिभादुर्ग: समवेत्यापि शत्रुभि: ॥१४३॥

कुरल काव्य

अर्थ - बुद्धि समस्त अचानक आक्रमणों को रोकने वाला कवच है, वह ऐसा दुर्ग है जिसे शत्रु भी घेर कर नहीं जीत सकते।

पुत्र का न्याय (विद्या)

महाराज श्रेणिक ने अभयकुमार की प्रखरबुद्धि की परीक्षा की सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर उन्होंने उन्हें युवराज बना दिया। तथा उनके बल की परीक्षा की एवं सभी सामन्तों से सम्मति लेकर अभयकुमार को सेनापति पद भी प्रदान किया। ''पूर्व पुण्य से क्या लाभ नहीं होते अर्थात् सभी प्रकार के लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। यह सब पुण्य पाप का ही खेल है जिससे एक प्राणी तो वह है जो बिना माँगे भी इच्छित पदार्थों को प्राप्त नहीं कर पाता है अपितु तिरस्कार ही पाता है।'' महाराज श्रेणिक अब अपने आपको बहुत बड़े राज्य संबंधी बोझ से मुक्त समझ हलके पन का अनुभव करने लगे, दिन प्रतिदिन उनकी धर्म भावना में वृद्धि होने लगी वे बौद्ध साधना में निरत हो गये।

जिम्मेदार व्यक्ति का सबसे बड़ा महान कर्तव्य है कि किसी योग्य उत्तराधिकारी को देख परीक्षा कर समय पर उसे अपनी जिम्मेदारी सौंप दे।

''जब कोई बड़ी जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है फिर स्वाभाविक हलकापन का अनुभव होने लगता है।''

यहाँ पर भी अभयकुमार भी बड़ी कुशलता एवं न्यायपूर्व अपने कर्तव्य का यथार्थ पालन करने लगे, उनकी न्याय नीति से सारी जनता बड़ी प्रसन्न थी। ''बुद्धिमान से कौन नहीं प्रसन्न होता

और कहाँ उसकी प्रशंसा नहीं होती, अर्थात् सभी जगह होती है।''

किसी एक दिन उसी मगंध देश में सुभद्रदत्त नामक सेठ रहता था। उसकी वसुदत्ता और वसुमित्रा नाम की दो स्त्रियां थी। वसुदत्ता के कोई संतान नही थी किन्तु वसुमित्रा के एक बालक था। दोनों स्त्रियों तथा पुत्र सहित सुभद्रादत्त सेठ एक दिन व्यापार हेतु अन्य देश गये। और व्यापार करते हुए वे राजगृह नगर आये। वहाँ पर सुख पूर्वक धन का उपार्जन करते हुए वही ही रहने लगे। किन्तु दुर्देव की बड़ी विचित्र गति है। एक दिन सेठ जी की मृत्यु हो गई। जिससे दोनों स्त्रियों को बड़ा दुख हुआ। वसुमित्र को अपने पुत्र पर जितना प्रेम था उससे भी कई गुना प्रेम वसुदत्ता का उस पुत्र पर था। अत्याधिक प्रेम के कारण कोई यह नहीं जान पाता था कि आखिर में यह पुत्र किसका है। सेठ जी की मृत्यु के पश्चात् दोनों सेठानियों में आपस में मनमुटाव होने लगा, धीरे-धीरे उनमें झगड़े के बीज अंकुरित होने लगे। झगड़े का मूलकारण वह लड़का ही था। दोनों सेठानियाँ लड़के को अपना- अपना ही बता रही थी। यद्यपि उनके रिश्तेदारों ने व पड़ोस के लोगों ने उन्हें अनेक बार समझाया भी था कि आप लोगों को इस प्रकार से झगड़ना शोभा नहीं देता, ऐसा करने से आपके कुल में दाग लगेगा, कुल कलंकित होगा इत्यादि। ''कषाय के तीव्रोदय में प्रथम तो सत्य, विवेक लुप्त हो जाता है और फिर यदि उस समय कोई समझाये तो भी उसका समझना विपरीत ही लगता है।''

बहुत प्रयास करने पर भी बच्चे की वास्तविक माँ का पता नहीं लगा पाये। अंत में झगड़ा महाराज श्रेणिक के पास पहुंचा। जब वे इस बात का निर्णय करने में असमर्थ रहे तब उन्होंने इसका न्याय कराने के लिए युवराज अभयकुमार के पास भेजा। अभयकुमार ने दोनों सेठानियों को प्रथम तो बहुत समझाया फिर लालच एवं भय भी दिखलाया तो भी दोनों स्त्रियों को जब अपने-अपने में अड़िग देखा तब उन्होंने रूष्ट हो म्यान से तलवार निकालते हुए कहा मैं इस तलवार से पुत्र के समान दो टुकड़े कर आप लोगों को दिये देता हूँ अब यही अंतिम न्याय होगा। इतना कह कर उन्होंने ज्यों ही पुत्र पर तलवार उठाई त्यों ही उसकी असली माँ (वसुमित्रा) जोर से चिल्लाई और कहने लगी नहीं ! नहीं !! ऐसा मत करो पुत्र मेरा नहीं है, दे दो उसे ही दे दो ये पुत्र वसुदत्ता का ही है। आप पुत्र को मारिये नहीं मैं उसे देखकर संतुष्ट रहूँगी.....इत्यादि। वसुदत्ता यह सब देख ज्यों कि त्यों खड़ी रही। इससे अभयकुमार ने पुत्र की असली माँ वसुमित्रा ही है ऐसा निर्णय कर उसे पुत्र दे दिया और वसुदत्ता को दण्डित किया। अभयकुमार का इस प्रकार न्याय पराक्रम देख सभी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

देखिये विद्या (ज्ञान) का प्रभाव विद्या से क्या-क्या सिद्धियाँ नहीं हो सकती है? विद्या से कहाँ सफलताएँ नहीं मिलती तथा ऐसा कौन सा यश है जो विद्या से प्राप्त नहीं होता है? विशेषता इतनी है कि उपरोक्त सभी उपलब्धियाँ विद्या के अनुसार किये गये आचरण

आचरण से ही संभव है। धन्य है वे प्राणी जो विद्या प्राप्त करने पर भी विनय एवम् नम्रता से सुशोभित रहते हैं, कभी भी उसका प्रदर्शन या गर्व नहीं करते।

अतः हम सभी को चाहिए कि हम भी ऐसी ही विद्या का संग्रह करें, जो सम्यक् आचरण से समाहित हो।

विद्या यशस्करी पुसाँ, विद्या श्रेयस्करी मता।
सम्यगाराधिता विद्या, देवता कामदायिनी ॥९९/१६ ॥

जिनसेनाचार्य

अर्थ - विद्या ही मनुष्य का यश करने वाली है विद्या ही पुरूषों का कल्याण करने वाली है। अच्छी तरह से आराधित की गयी विद्या देवता ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

विषयासक्ति

अयोध्या नगरी में बलभद्र नामक एक किसान रहता था। वह बड़ा ही भोला किन्तु सदाचारी था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा था। वह सुंदर थी, वह पति की सेवा को अपना धर्म समझती थी, अपना पति उसे ईश्वर तुल्य थे । उसी नगर में एक वसंत नामक क्षत्रिय भी रहता है उसकी स्त्री का नाम माधवी था। वह अत्यंत कुरूपा थी इसलिए वसंत उससे सदा ही उदास रहता था। किसी एक दिन वसंत की नजर भद्रा पर पड़ी। जिससे वह उस पर मुग्ध हो गया। फिर क्या था उसकी प्राप्ति की अविरत चिंता ने उसे इतना बैचेन कर दिया कि जिससे फिर उसे न तो भूख ही थी और न ही रात्रि में नींद। काम की तीव्र ज्वाला में वह इतना जल रहा था कि जिसे अनेक तरह से शीतलोपचार करने पर भी किंचित भी शांति नहीं मिल रही थी। ''काम वासना की ज्वाला इतनी तेज होती है जिसकी आपूर्ति में प्राणी अपने प्राणों तक को भी होम देता है।''

एक दिन उसने एक कुट्टनी स्त्री को बुलाया और उसे अपने मन की सभी बात बताते हुए कहा कि जिस किसी प्रकार भी से आप भद्रा को मुझ से मिला दो, भद्रा की प्राप्ति होने पर मैं तुझे मुँहमांगा धन दूँगा। धन के लोभ मे आकर कुट्टनी ने षड़यंत्र रचना प्रारंभ कर दिया वह भद्रा के घर गयी और उसने उसे अपनी चतुराई

पूर्ण हितैषिता दिखायी और मिष्ट शब्दों में उसे समझाने लगी कि हे भद्रे ! तू बड़ी सुंदर एवं रमणीय रत्न है। किन्तु तेरे कुरूप एवं निर्गुण पति को देख मुझे तुझ पर दया आती है कि तुझे कुरूप पति से कभी भी संतोष नहीं होता होगा। तुझ जैसी अन्य कोई सुंदरी होती तो ऐसे पति को कभी की छोड़ देती किन्तु तुम उसके साथ कैसे रह रही हो इसका मुझे आश्चर्य है इत्यादि। कुट्टनी बातों का भद्रा पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। वह मन ही मन दुःखी हो कहने लगी कि - बहिन ! मैं क्या करूँ मेरे भाग्य में तो ऐसा ही पति था? रूपवान पति मिलता कहाँ से? भद्रे की बात सुन कुट्टनी मन ही मन बड़ी प्रसन्न हुई और बनावटी खेद प्रगट करती हुई बीच में कहने लगी तो तू इतना विषाद क्यों करती हो। चिंता छोड़ो मैं एक उपाय बताती हूँ। इसी नगर में एक क्षत्रिय पुरूष रहता है वह अत्यंत रूपवान, गुणवान है एवं धनवान है। वह तेरे ऊपर मोहित भी है, अनेक बार मैंने उसके मुँह से तेरे रूपलावण्य की चचाएि सुनी है, इसके साथ ही तू संतुष्ट हो, वहीं तेरे लिये एक निधि है और उसी से तेरे यौवन की शोभा है। "दुष्ट प्राणियों की क्षण भर की संगति भी जीवन की अमूल्य निधि को कलंकित कर देती है।" भद्रा वसंत के रूप पर मुग्ध हो गयी और बसंत के घर आना जाना प्रारंभ कर दिया उसने वसंत से चर्चा करना एवं हंसी मजाक के साथ साथ अश्लील क्रियायें भी धीरे-धीरे प्रारंभ कर दी। अब वह वसंत पर इतनी अधिक आसक्त हो गयी कि जिसके कारण उसे अपने पूर्व

पति से भी घृणा होने लगी उससे तिरस्कार एवं झगड़ा तक करने लगी। उसे वह मार्ग में बड़ा कांटे के सदृश लगने लगा।

देखिये! वासना का परिणाम कि जो स्त्री अपने पति की सेवा में कितनी परायण थी, वह अपने पति को एक ईश्वर तुल्य समझती थी वहीं स्त्री अब दूसरे में आसक्त हो गयी तब उसी पति को एक कांटे के सदृश्य समझने लगी। धिक्कार हो ऐसी वासना को, जिसके कारण प्राणी सदाचार से चलायमान होकर बड़े से बड़े अनर्थ करने तक को तैयार हो जाता है फिर उसे भविष्य का कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

अतः बंधुओं ! ध्यान रखो कभी भी भूलकर ऐसी वासनाओं के चक्र में नहीं फँसना। यदि तुम पूर्ण रूप से ब्रम्हचर्य व्रत धारण नहीं कर सको तो कभी भी परपुरूष या स्त्री का गमन नहीं करना।

*****

विषयासक्त चित्तानां गुणा कोवा न नाश्यति।
ना मानुष्यं न वैदुष्यं नाभिजातं न सत्यावाक्॥

आ. वादीसिंह

अर्थ - जिनका चित्त विषयों में आसक्त हो जाता है ऐसा वह कौन प्राणी है जो अपने गुणों को नष्ट नहीं करता हो फिर न तो उसमें मनुष्यता ही रहती है, न विद्ववत्ता ही रहती है न कुलीनता रहती है और न फिर उसमें सत्यता ही रहती है।

विषय तृष्णा

एक दिन भद्रा खाना लेकर बलभद्र के पास खेत पर जा रही थी। रास्ते में उसे पूज्य गुणसागर नामक मुनिराज केदर्शन हो गये। उन्हें देखते ही वह उन पर मोहित हो गयी और उनके विषय में तरह-तरह के कल्पना जाल गढ़ने लगी। "विषयांध प्राणी को इतना विवेक कहाँ होता है कि जिसके द्वारा वह, यह सोच सके कि हम किसके बारे में और क्या सोच रहे है? ऐसा सोचना मुझे उचित है या नहीं।" उसने महाराज से ललित वाणी में कहा कि हे युवातपस्वी ! आप का यह सुन्दर सुकुमार शरीर क्या तपस्या के योग्य है? आपकी यह नवयौवन अवस्था साधना के योग्य नहीं है। आप तो प्राप्त हुए हम लोगों से श्रेष्ठ भोगों को भोगो। संन्यास मय जीवन की शोभा तभी है जब की इन्द्रिय विषय सेवन करने में असमर्थ हो जाय। उनके समर्थ होते हुए भी उनसे विषय भोग शहद लपेटी तलवार समान है, जो प्रारंभ काल में क्षणिक सुख को देकर अंत मे सारी जीवन लीला को समाप्त करने वाले हैं और पर लोक में तीव्र असंतोष के आंसू बहाने वाले हैं। प्राणी विषय सेवन के समय तो यह भूल जाता है किन्तु उस समय बांधे कामों के उदय काल में पश्चाताप करता रोता है, चिल्लाता है.....इत्यादि। महाराज के हृदय स्पर्शी उपदेश का भद्रा पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने विषयों से विरक्त हो महाराज से 'एक-पतिव्रत' नाम का व्रत ले लिया और उसकी बड़ी दृढ़ता से पालन करने लगी।

अब वह वसंत से पूर्णरूपेण विरक्त हो गयी थी। इसलिए वसंत को देखना तो बहुत दूर रहा अपितु उसे तो उसकी वार्ता तक नहीं सुहाती थी। "जब धर्म सत्य रूप से हृदय में समाहित हो जाता है तब फिर पाप कर्मों की वार्ताएं भी हलाहल जैसी लगने लगती है।"

भद्रा के व्रत लेने का समाचार जब वसंत को मालूम हुआ तब वह बहुत ही दुःखी हुआ। वह मन ही मन सोचने लगा - न जाने भद्रा मुझसे क्यों नाराज हो गयी मेरे से क्या गलती हो गयी, क्यो वह मुझसे रूठ गयी है अब क्या करूं कैसे उसे मनाऊँ, उसने मुझे बिना बताये व्रत कैसे ले लिया, उसके बिना मेरा जीवन कैसे चलेगा, ऐसा कौन सा उपाय है? जिससे वह मुझे प्राप्त हो सके इत्यादि। अनेक संकल्प विकल्प करने लगा उसने सोच विचार कर एक दूती को बुलाया और उसे समझा बुझा कर भद्रा के पास भेजते हुए कहा कि हर प्रयत्न से तुम भद्रा को मुझमें आसक्त करने का प्रयत्न करो, मैं, तुझे इच्छित धन दूंगा। दूती ने अपनी कुशलता बताते हुए कहा आप चिंता न करे, मैं अभी उसे आपके पास लाती हूँ। वह अवश्य ही आपको चाहेगी और आप से उपभोग करेगी थोड़ा धैर्य धारण करो मैं अभी आती हूँ इत्यादि प्रकार से कहती हुई वह दूती भद्रा के घर पहुँच गयी। उसने वहाँ भद्रा को समझाने का प्रयास किया। किन्तु भद्रा ने जैसे ही यह जाना कि यह वसंत की दूती है मुझे फुसलाने हेतु ही यह मेरे पास आयी है। यह बात समझ उसने

जोर से उसे ड़ाटते हुए कहा - री दूती ! ध्यान रख ! तूने यहाँ पर एक भी शब्द निकाला तो तेरे लिए अभी यमलोक पठा दूंगी। तूं यह नहीं जानती कि मैं कौन हूँ निकल जा अभी यहाँ से नहीं तो तेरी खैर नही रखूंगी। ''पापिष्ठ प्राणी को आश्रय देना ही पाप की पुष्टि करना है। सज्जन उन्हें एक ही डांट से सदा-सदा के लिए शांत कर देते है।''

अंत में दूती निरूपाय ही लौट गयी। तब एक दिन मौका पाकर भद्रा के पास वसंत आ गया। वसंत को देख भद्रा ने कहा कि मैंने जैन मुनि से शीलव्रत ले लिया हैं, मैं अब कदापि तेरे से विषय भोग नहीं करूंगी मैं इस व्रत का जीवन पर्यन्त प्राणपन से निभाऊंगी, भले ही प्राण चले जायें किन्तु मैं व्रत नहीं छोड़ूँगी। तुम जाओ और अपनी स्त्री मैं ही संतोष धारण करो। भद्रा के मुख से उक्त बाते सुन बसंत ने उसे धमकी दिखायी। किन्तु भद्रा ने कुछ भी परवाह न कर उसे बुरी तरह से ड़ांटा जिससे वह एक भी शब्द नहीं बोल सका। ''सच्चे ह्रदय से लिए गये व्रत से आत्मा में वह दैविक शक्ति आ जाती है कि जिससे बड़े-बड़े शूरवीर भी परास्त होकर स्वयं अपना रास्ता काट जाते है।'' बसंत मन ही मन सोच रहा था किस तपस्वी ने इसे यह व्रत दे दिया है अब मैं इसे कैसे संतुष्ट करूँ ? अब इसका हरण करूँ या अपने प्राण दूँ, कोई मंत्र का प्रयोग करूं या संतोष धारण करूं इत्यादि सोचता हुआ निराश हो वह अपने घर चला गया।

देखिये ! मुनियों के असिधारा शीलव्रत को, धन्य है उनके जीवन को जिन्होंने आत्मकल्याण की परमोत्कृष्ट साधना में विषयों की जरा भी परवाह नहीं की। प्राप्त एवं सुलभ विषयों को भी जिन्होंने हँसते-हँसते छोड़ दिया, यह है उनका सच्चा विवेक धर्म ज्ञान एवम् वैराग्य। वैराग्य धर्म चर्चा का विषय नहीं होता है। अपितु वह तो आचरण का ही विषय है। जो आचरण करते है वे ही उसके वास्तविक मूल्य को समझते हैं और उसका वास्तविक आनंद लेते हैं। वे अपने व्रत में मेरू के समान अचल एवं अडिग रहते हुए भी चलित चित्त प्राणी को स्थिर करते हैं।

अतः हे भव्यों। हम सभी को ऐसा व्रत धारण करना चाहिये और उसमें सदा अडिग रहना चाहिये फिर कोई कितना भी क्यों न डिगाना चाहे तो भी उसे परीक्षा समझ प्राणपण से उसमें उत्तीर्ण होना चाहिये।

काले कलौ चित्ते देहे कीटके।
एतच्चितं यद्यपि जिन रूप धरा नरा: ॥२८॥

यशस्तिलक चंपू आ. सोमदेव

अर्थ - यह कलिकाल है इसमें प्राय: सभी प्राणियों का चित्त चंचल होता है विषयों में चलायमान रहता है तथा शरीर अन्न का कीड़ा बना रहता है फिर भी आश्चर्य है कि ऐसे कलिकाल में भी मन को और क्षुधा को जीतने वाले जिनरूप धारी मुनिराज विद्यमान है।

वासना की प्यास

अयोध्या नगर में एक दिन सिद्ध मंत्रवेत्ता महाभीम नामक एक मंत्रवाही आया। उसकी चर्चा जब बसंत के कान में पड़ी तो शीघ्र ही मंत्रवेत्ता के पास पहुँच गया और उसकी बड़ी सेवा भक्ति करने लगा। बसंत ने उससे रूपपरिवर्तन (रूप बदलने की) विद्या मांगी। मंत्रवेत्ता ने उसे सहर्ष एक मंत्र सिद्ध करने को देते हुए कहा इसके सिद्ध होने पर आप अपनी इच्छानुसार अनेक रूप बना सकते हो। बसंत ने उस मंत्र की विधि पूर्वक आराधना कर सिद्धी कर ली और अपनी इच्छानुसार अनेक रूप बनाने लगा। ''व्यसनी प्राणी विषय पूर्ति के लिए क्या-क्या उपाय नहीं करता विषयांधता में वह बड़ी गुण विभूतियों का भी दुरूपयोग करके धूसरित कर देता है।''

एक दिन अर्धरात्री के समय वह भद्रा के मकान के पास पहुँचा। वहाँ उसने मुर्गे की आवाज में कुकड़ूकूऽऽ अनेक बाग दी। मुर्गे की आवाज सुनकर बलभद्रा उठा उसने मुर्गे की आवाज से प्रातःकाल का अंदाज लगाया और बैल लेकर वह खेत की ओर चला गया। बसंत तो यह चाहता था कि जिस किसी तरह से बलभद्र यहाँ से चला जाये ताकि में भद्रा से मिल सकूं। अब क्या था बसंत ने हूबहू अपना रूप बलभद्र सदृश्य बना लिया और वह शीघ्र ही भद्रा के पास पहुँच गया। किन्तु उसकी चाल-ढ़ाल से भद्रा समझ

गयी की यह उसका वास्तविक पति नहीं है। वह उसे जोर-जोर से ताड़ना देने लगी। नकली बलभद्र ने मकान के सभी दरवाजे बंद कर लिये और वह भद्रा से छेड़खानी करने लगा। भद्रा उसके इस दुर्व्यवहार से चिल्ला उठी। दोनों के झगड़े की आवाज मुहल्ले के अनेक लोग एकत्रित हो गये। उक्त घटना की वार्ता असली बलभद्र तक भी पहुंची जिससे वह भी दौड़ता हुआ अपने घर आया। उसने अपने समान रूप धारी दूसरे को देख उससे झगड़ना प्रारंभ कर दिया। किन्तु एक जैसे दो रूप देख पड़ोस के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। ''कपटी के कपट जाल को समझ पाना आसान नहीं होता है उसे सभी नहीं समझ सकते, समझने वाले कोई विरले ही होते है।''

उन्होंने असली बलभद्र को जानने के अनेक उपाय किये, परंतु वास्तविक पता लगाने में असफल ही रहे। तब वे सभी दोनों बलभद्रों को लेकर युवराज अभयकुमार के पास पहुंचे और सारा वृत्तांत कहने के पश्चात् असली बलभद्र को पहचाने को कहा।

अभयकुमार ने असली बलभद्र को जानने के अनेक उपाय किये। भय और लालच भी दिखलायी किन्तु जब वे सभी में असफल रहें तब उन्होंने दोनों बलभद्रों को एक कमरे में बंद कर दिया और भद्रा को राजसभा में बुलाया। पश्चात् एक तुंबी को अपने सामने रखकर दोनों बलभद्रों से कहा, भाई आप दोनों में से वही बलभद्र सत्य समझा जायेगा और उसे ही भद्रा दी जायेगी जो

बंद कमरे से निकल कर इस तुंबी के छिद्र से निकलेगा। अभयकुमार की बात सुनकर असली बलभद्र बड़ा दुःखी हुआ, वह सोच रहा था कि कैसे संभव हो सकता है। नहीं मालूम अब क्या होता है.....इत्यादि। किन्तु नकली बलभद्र बड़ा प्रसन्न हुआ। उसका शरीर रोमांचित हो उठा। ''असत्य बात कब तक छिपी रह सकती है वह तो कभी न कभी अवश्य ही प्रगट हो ही जाती है।और तभी असल का वास्तविक रूप दिखता है।'' वह विद्या के बल से शीघ्र ही बंद कमरे से निकल तुंबी के छिद्र से निकल आया और उसने भद्रा का हाथ पकड़ लिया। यह दृश्य देखा सभा शोर-गुल से गूंज उठी कि यही नकली बलभद्र है यही नकली बलभद्र है। अभयकुमार ने उसे दण्डित कर नगर से बाहर निकाल दिया तथा असली बलभद्र को कमरे से बाहर निकाल कर उसे ससम्मान भद्रा को सौंप दिया।

देखिये कुशील का प्रभाव ! प्राणी कुशील सेवन में कितना अंधा हो जाता है कि जिसमें वह अपने सारे जीवन को कलंकित कर लेता है, जन-जन में हंसी का पात्र बन जाता है, तथा उसकी दृष्टि सदा-सदा को झुक जाती हैं, कितना भी धन, बल या विद्वता आदि क्यों न प्राप्त हो जायें तथा वह कितनी धर्म पूर्ण साधना क्यों न करने लगे तो भी उसका वह दाग घुलता नहीं है। पाप छूट जाता है किन्तु दाग नहीं छूटता। शरीर समाप्त हो जाता है किन्तु निंदा समाप्त नहीं होती तथा कृत पाप कर्म का परिणाम इस लोक में तो जो मिलता है वह मिलता ही है। किन्तु उससे परलोक में भी असह्य

वेदना सहन करनी पड़ती है।

इसलिए हम सभी को चाहिये कि हम सदा शीलव्रत धारण करें, उत्तम मार्ग तो यही है कि जीवन पर्यंत ब्रम्हचर्यव्रत धारण करें और यदि यह संभव न हो सके तो कम से कम स्वदार संतोषव्रत या एक पतिव्रत धारण कर उसमें ही संतुष्ट रहना चाहिये। अपनी स्त्री या पति का छोड़कर कभी दूसरे की स्त्री या पुरूष पर बुरी दृष्टि नहीं ड़ालते हुए उन्हें माता, बहिन, बेटी के समान या पिता, भाई, पुत्र के समान समझना चाहिये।

अशील तो महापाप मशीलान्नरके स्थितिः।
अशीला द्वेदना तीव्रा निःशीलात् संसृतिभ्रमः ॥४५/४७॥

श्री शुभचंद्राचार्य

अर्थ - शील से रहित हो कुशील सेवन करना महापाप है नरक ले जाने वाला है तीव्र वेदना को उत्पन्न करने वाला है तथा इस अशील से ही अज्ञानी प्राणी संसार में भ्रमण करता है।

बुद्धिमत्ता एवम् अंगूठी

संसार में ज्ञान प्राणी को जीवन जीने की कला सिखाता है। विश्व में उनका ही ज्ञान सार्थक एवं सारभूत समझा जाता है जो कि जीवन को वास्तविक मार्ग दर्शन देकर धर्म की ओर मोड़ देते है। ज्ञान होना एक बात हैं किन्तु ज्ञान को आत्मसात करना दूसरी बात है जब तब ज्ञान आचरण के मार्ग से आत्मसात नहीं हो जाता तब तक उसका सच्चा आनंद नहीं आ पाता हैं भले ही हम उसकी कोरी गाथाऐं गाते रहें। शास्त्रों में जो "ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण" कहा है यह आचरण की प्रधानता से ही कहा है क्योंकि जब तक ज्ञान के अनुरुप आचरण नहीं होता है तब तक आनंद नहीं होता है और आचरण विहीनता में जो आनंद होता है वह ज्ञान का सत्य आनंद नहीं है। उस ज्ञान में अहंकार-उग्रता अशिष्टता और पक्षपात के ही रूप दिखते हैं।विनय एवं नम्रता की विलोम अवस्थाएं ही समुद्भूत हो जाती हैं । किन्तु अभयकुमार का ज्ञान इस से विपरीत था। वे अपने उस ज्ञान को अक्षरश: जीवन में ढ़ालकर जीवन को उसके अनुरूप बनाना चाहते थे। उस ज्ञान से उनमें सरलता विनम्रता सदाचार आदि की वृद्धि अनायास ही हुई थी। इसलिए सर्वजन उनसे सदा प्रसन्न रहते थे और आपस में उनकी सद्बुद्धि की प्रशंसा करते थे।

एक दिन महाराज श्रेणिक की अंगूठी किसी कुयें में गिर गयी उन्हें वह बहुत प्रिय थी। उन्होंने शीघ्र ही अभयकुमार को बुलाया और उनका बुद्धिचातुर्य देखना चाहा। उन्हें कुमार की चातुर्यता का बड़ा कौतुहल था यद्यपि वे चाहे जिससे अंगूठी कुये से निकलवा सकते थे तो भी उन्होंने अभयकुमार से ही कहा - प्रिय कुमार ! मेरी अंगूठी अमुक कुए में गिर गयी। कुआ यद्यपि जल से रिक्त है सुखा है तो भी उसमें कोई उतरे नहीं और बांस आदि की बिना सहायता लिये अंगूठी निकाल कर लाओ। अभयकुमार ने कहा पिता श्री ! ऐसा ही होगा मैं अभी जाता हूँ और बिना बांस आदि के तथा उसमें किसी के बिना उतरे ही मैं अंगूठी लाता हूँ। इस प्रकार कहकर अभयकुमार विवक्षित कुयें के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने प्रथम तो कुयें में गोबर भरवाया और कुछ समय तक सुखने दिया जब गोबर पूर्ण सूख गया तो उसको जल से पूर्ण भरवा दिया। जल से भरने से गोबर ऊपर आ गया और गोबर के साथ-साथ अंगूठी भी ऊपर आ गयी। कुमार ने उसे लेकर महाराज श्रेणिक को भेंट की, महाराज श्रेणिक अभयकुमार की बुद्धि चातुर्य को देख बड़े प्रसन्न हुए और वे कुमार की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

देखिये ! बुद्धि में वह चमत्कार है जो गिरे प्राणी को उच्च एवं जगत् पूज्य बना देती है। बुद्धि कभी भी किसी का पतन नहीं करती अपितु प्राणी ही मोह और कषाय के कारण उसका दुरूपयोग

कर या तो विषयासक्त हो उसे विषयों की खोज एवं उसके रसास्वादन में में लगाकर अपना पतन करता है या उस तुच्छ ज्ञान को पाकर गर्विष्ट हो विशिष्ट ज्ञानी साधू संत गुरू आदि तक की अवहेलना कर उन्हें नीचा दिखाने का भी अहर्निश षड़यंत्र रचता है। गर्व की तीव्रता में कई वार यहाँ तक भी देखा जाता है कि वे अपने अधूरे ज्ञान की कमी के या न समझी के कारण जानकर भी नहीं छोड़ पाते और जिस किसी भी तरह से उसे ही सत्य बनाना चाहते है और सत्य को नष्ट कर अपना पतन करते हैं। किन्तु बुद्धिमान प्राणी सदा इससे विपरीत ही होते है, उनकी बुद्धि प्रदर्शन या विषय कषाय के लिए नहीं अपितु स्व-पर के कल्याण के लिये होती है। नम्रता सरलता सदाचार एवं कल्याण साधना से समाहित होती है। इस कारण से वे सदा सभी जगह आदर एवं स्नेह के भाजन हो सदा सुखी एवं स्नेह के भाजन ही सदा सुखी एवं शांति से पूर्ण रहते है। उनसे सभी प्रसन्न रहते हैं। तथा उनकी प्रशंसा करते हुए उनकी संगति पाकर अपना अहोभाग्य समझते है।

इसलिए हम सभी को भी चाहिये कि हम भी ऐसी बुद्धि अर्जन करें जो हमें विषय कषायें से छुड़ा कर धर्म की सत्य दिशा में लगाये, विनय, नम्रता, सरलता एवं सदाचार का वर्द्धन करें। उससे ही हमारा जीवन पावन बन सकता है।

अंतिम मंगल

नैतिकता के पतन को, धर्म पतन ही जान।
धर्म पतन द्वय लोक में, देगा दुख का दान ॥१॥

दुखो से बचना चाहो, नैतिकता को थाप।
यही धर्म का बीज है, इस बिन सुख न प्राप्त ॥२॥

इसी लक्ष्य से लिखी गयी, धर्म-नीति मय आप।
श्री नैतिक कथा मंजूषा, हरे जगत संताप ॥३॥

आगम के आधार से, लिखा पवित्र यह ग्रंथ।
फिर भी रही जो त्रुटि लो, शोध पढ़ो धीमंत ॥४॥

गजरथ उत्सव के समय, ग्राम पथरिया नाम।
विरागसागर मुनीश का, प्राप्त योग इति काम ॥५॥

वीर निर्वाण पच्चीस शत, सोलह श्री बुधवार।
फाल्गुन सित एकादशी ज्ञानोदय के वार ॥६॥

विमल जिनेन्द्र-वाणी-गुरू, जिनका पा आशीष।
"विराग" नमूं उनको सदा, धर चरणन में शीश ॥७॥

नैतिकता अरू धर्म से, जीवन बने महान।
यही पवित्र मम भावना, सब का हो कल्याण ॥८॥

इस प्रकार नैतिक कथा मंजूषा का प्रथम भाग पूर्ण हुआ।
।। इति शुभं भूयात् सर्व जिनानाम्॥

卐卐卐

परमपूज्य संत प्रवर आचार्य श्री विराग सागरजी महाराज द्वारा साहित्य सृजन

आगम - आलेख

१) शुद्धोपयोग
२) आगम चक्खू साहू
३) सम्यग्दर्शन
४) सल्लेखना से समाधि
५) व्यसन विचार
६) जिनेन्द्र दर्शन-पूजन
७) फूल नहीं ये कांटे
८) जैनागम में यज्ञोपवीत विधि एवं विशेषतायें

प्रवचन साहित्य

९) धर्म पीयूष
१०) ऐसो चलो मिलेगी राह
११) पहले पूजा फिर काम दूजा
१२) पर्यूषण निधि (दस धर्म प्रवचन)
१३) दूर नहीं है मंजिल
१४) तीर्थंकर वर्द्धमान
१५) तीर्थंकर ऐसे बनो (सोलह कारण प्रवचन)
१६) सिर्फ दो प्रवचन
१७) आस्था आलोक
१८) उड़ रे पंछी धीरे-धीरे
१९) तट की ओर
२०) साधना के आगे बढ़ते कदम

दैनिक उपयोगी साहित्य

२१) विमल नित्य पाठावली
२२) बाल विज्ञान भाग - १
२३) बाल विज्ञान भाग - २
२४) बाल विज्ञान भाग - ३
२५) बाल विज्ञान भाग - ४
२६) कर्म विज्ञान भाग - १
२७) कर्म विज्ञान भाग - २
२८) कर्म विज्ञान भाग - ३
२९) देव दर्शन विधि एवं महत्त्व
३०) साधना के सोपान

पद्य साहित्य

३१) भावों के विशुद्ध क्षण
३२) मुक्तांजली भाग १
३३) मुक्तांजली भाग २
३४) नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा
३५) भक्तामर पद्यानुवाद

अन्य साहित्य

३६) नैतिक कथा मंजूषा भाग - १
३७) नैतिक कथा मंजूषा भाग - २
३८) चैतन्य चिन्तन भाग - १
३९) चैतन्य चिन्तन भाग - २
४०) चैतन्य चिन्तन भाग - ३
४१) सत्य मित्र सत्य दृष्टि (एकांकी)

प्रकाशक : श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

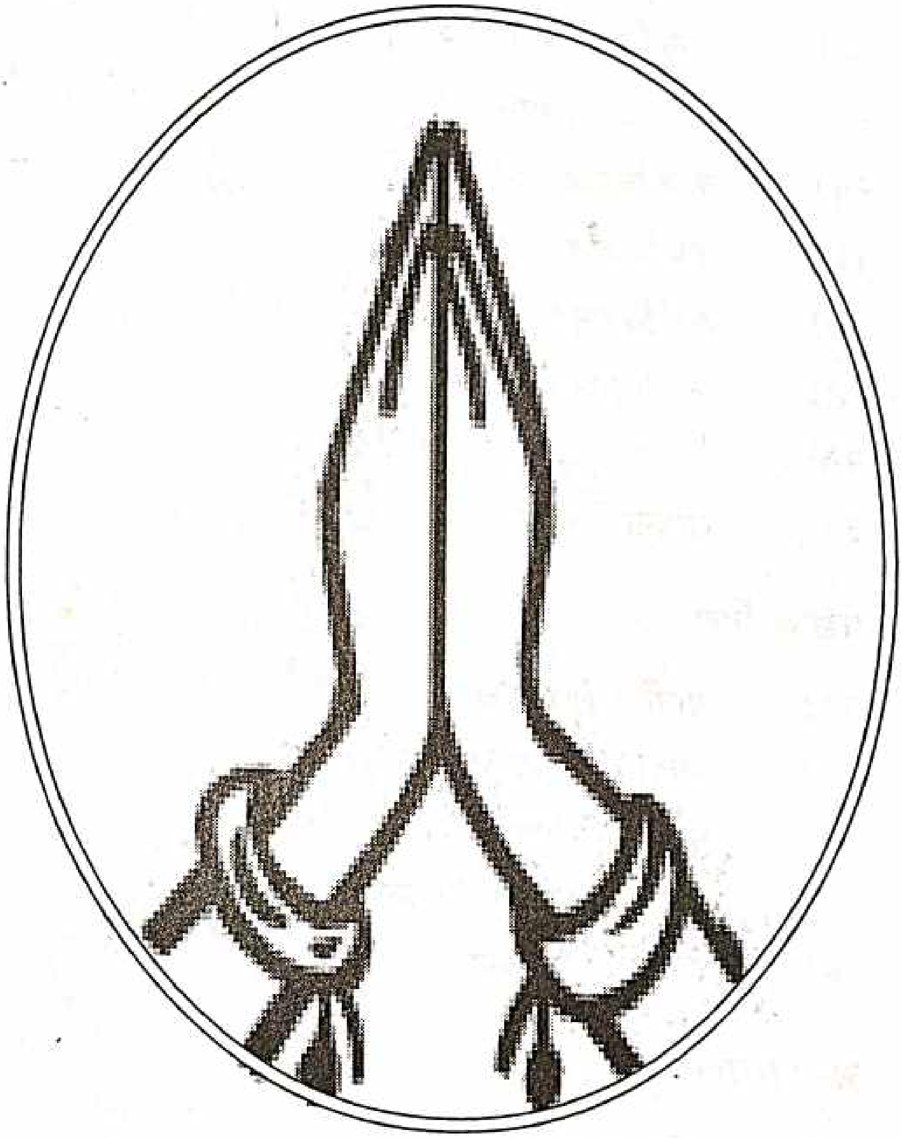

जय जिनेन्द्र

जीवन बिन्दु

पूर्व नाम	:	अरविन्द कुमार जैन
जन्म	:	२ मई १९६३, शुक्रवार (वैशाख शु. ९ संवत २०२०, पथरिया)
माता, पिता	:	श्रीमती श्यामदेवी जैन, श्री कपूरचंदजी जैन
लौकिक शिक्षा	:	इण्टर (पथरिया, जैन शांति निकेतन, कटनी म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	२० फरवरी १९८०, (फाल्गुन शु. ५ सं. २०३६ बुधार, शहडोल)
नामकरण	:	पूज्य १०५ श्री पूर्णसागरजी महाराज
मुनि दीक्षा	:	९ दि. १९८३ (मगसर शु. ५ वि.सं.२०४०), औरंगाबाद (महा.)
मुनि दीक्षा गुरु	:	प.पू. आचार्य श्री १०८ विमल सागरजी महाराज
आचार्य पद	:	८ नव. ९२ (कार्तिक शु. १३ वि.सं. २०४९) रविवार, द्रोणागिरी
संयम सृजन	:	मुनि ३५; आर्यिका ३२; ऐलक १० ; क्षुल्लक २१; क्षुल्लिका ६ तथा ब्रम्हचारी भाई, बहने ५०
समाधि संल्लेखनायें	:	१९
चातुर्मास	:	१९८० से २००४ तक क्रमशः दुर्ग, नागपूर, कारंजा(लाड), कारंजा(लाड), भावनगर, पांचवा, निवाज, जयपूर, भिण्ड, भिण्ड, टीकमगढ, श्रेयांसगिरी द्रोणागिरी, श्रेयांसगिरी, बीना, ललितपूर, मढीयाजी (जबलपूर) भिण्ड, भिण्ड, भिण्ड, शिखरजी, गया, श्रेयांसगिरी, भिलाई, कारंजा(लाड)

आनंद, कारंजा - २२२९७३